अध्यात्म से समृद्धि, स्वास्थ्य एवं शान्ति
भाग 1 : अनेकान्त समझ

डॉ. पारसमल अग्रवाल
प्रोफेसर भौतिक विज्ञान (Retd.)

- प्रकाशक -

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ

(देवी अहिल्या वि.वि. द्वारा मान्य शोध केन्द्र)

584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001

फोन : 0731 - 2545421, 2545744

कृति :

अध्यात्म से समृद्धि, स्वास्थ्य एवं शान्ति

भाग 1 : अनेकान्त समझ

लेखक :

डॉ. पारसमल अग्रवाल

11, भैरवधाम कॉलोनी, सेक्टर 3,

उदयपुर (राज.) फोन : 098286-17985

प्रथम संस्करण

अक्टूबर 2007

मूल्य - 100 रु.

I.S.B.N. 81 - 86933 - 29 - 8

मुद्रक :

सुगन ग्राफिक्स

एल.जी. 11, टेड सेंटर, इन्दौर - 452 001

फोन : 0731 - 4065518

प्रकाशक :

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ

584, महात्मा गांधी मार्ग,

तुकोगंज, इन्दौर - 452 001

आमुख

सद्‌गुणों से ही अच्छा स्वास्थ्य, समृद्धि एवं शान्ति संभव है। ऐसा भारतीय आचार्यों ने हजारों वर्ष पूर्व बताया था। किन्तु ऐसा लगता है कि आज इस बात को मानने वाले एवं जीवन में उतारने वालों की संख्या पश्चिम जगत में बढ़ रही है व भारत में कम हो रही है। भारत में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बढ़ रही है जो यह मानते हैं कि धन से जीवन सफल हो जाता है व धन दुर्गुणों से ज्यादा प्राप्त होता है।

सच यह है कि दुर्गुण अपनाकर धन प्राप्त करने वालों की संख्या भारत सहित पूरे विश्व में इतनी अधिक है कि यदि दुर्गुणों से ही धन आने लगता तो विश्व की गरीबी अब तक समाप्त हो चुकी होती।

दुर्गुणों की स्वीकार्यता वाली मान्यता से यह परिणाम आज देखने में आता है कि कुछ व्यक्तियों को पूर्व पुण्योदय से वर्तमान दुर्गुणों के होते हुए भी धन तो मिल जाता है किन्तु पारिवारिक अशान्ति एवं बीमारियां भी साथ में बोनस के रूप में प्राप्त हो जाती हैं।

सच्ची समझ पर आधारित सद्‌गुण ही विशेष उपयोगी होते हैं। सम्यग्दर्शन की उपलब्धि भी सच्ची अनेकान्त समझ से होती है। आचार्य समन्तभद्र रत्नकरण्ड श्रावकाचार में स्पष्ट रूप से यह बताते हैं कि सच्ची समझ से ओज, तेज, विद्या, यश, वैभव आदि प्राप्त होते हैं।

पुस्तकों से समझ एवं समझ से जीवन बदल सकता है, या जीवन की समस्याओं को हल करने में पुस्तकें उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं, ऐसी धारणा पश्चिम जगत में तो है किन्तु भारत में बिरले व्यक्ति ही ऐसा सोचते हैं। हिन्दी भाषा में दैनन्दिन जीवन में उपयोगी ऐसी पुस्तकों की आज विशेष आवश्यकता है जो सरल भाषा में हो व उपदेशात्मक न होकर प्रेरणास्पद हो। समाचार पत्रों में प्रकाशित पारिवारिक कलह से संबन्धित घटनाओं एवं सड़क दुर्घटनाओं की संख्या को देखकर स्पष्ट लगता है कि पारिवारिक कलह, तनाव, ईर्ष्या आदि भारत में बढ़ते जा रहें हैं, जिन पर ब्रेक लगाने हेतु कई तरह के प्रयास करने की आवश्यकता है।

अंग्रेजी भाषा में उक्त प्रकार की प्रेरणास्पद पुस्तकें सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध हैं। पश्चिम जगत में चर्च के विद्वान, प्रोफेसर, मनोवैज्ञानिक आदि जीने की कला सिखाने के उद्देश्य से बहुत सरल शब्दों में धार्मिक, नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर प्रेरणादायक पुस्तकें लिखते हैं। इस तरह की शताधिक पुस्तकें लेखक ने स्वयं पढ़ी हैं, व अनुभव किया है कि व्यक्ति एवं समाज के विकास में इस तरह की पुस्तकें आवश्यक हैं।

उक्त समस्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह पुस्तक लिखी गई है। लिखते हुए यह ध्यान में रखा गया है कि ऐसी बहुजनोपयोगी पुस्तकों में न तो विद्वत्तापूर्ण गंभीर बातों की महत्ता होती है और न ही उपदेशात्मक भाषा कोई पाठक पसन्द करता है। एक तरह से के.जी. की पुस्तक लिखने जैसा कार्य है। पाठक पायेंगे कि इस पुस्तक में कम से कम पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। यहां तक कि स्याद्वाद एवं सप्त भंग जैसे शब्द भी केवल परिशिष्ट में आये हैं।

मैं आचार्यश्री कनकनन्दीजी, डॉ. शेखरचन्द्र जैन, डॉ. अनुपम जैन, श्री जे.सी. गोयल, डॉ. एन. एल. कछारा, श्री सुजानमलजी गदिया, श्री प्रकाशचन्द्र झाँझरी, श्री माणकलाल अग्रवाल, एवं श्रीमती पुष्पा अग्रवाल के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने पांडुलिपि को आद्योपान्त पढ़कर कई उपयोगी सुझाव देकर विषय वस्तु को समृद्ध बनाने में मदद की । पाठकों से भी पुस्तक के परिवर्द्धन एवं परिमार्जन हेतु सुझाव सादर आमंत्रित हैं। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने पुस्तक को प्रकाशित करने का निर्णय कर एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति में योगदान दिया है एतदर्थ ज्ञानपीठ के प्रबन्धन विशेषतः कासलीवाल परिवार के प्रति आभार।

मैं आशा करता हूँ कि यह प्रयास कई पाठकों के जीवन में उपयोगी सिद्ध होगा।

15 अगस्त 2007

डॉ. पारसमल अग्रवाल
11, भैरवधाम कॉलोनी, सेक्टर 3, उदयपुर (राजस्थान)
Tel.: 098286-17985

प्रकाशकीय

पर्याप्त भौतिक समृद्धि के बावजूद पाश्चात्य देशों की समाज में शान्ति का अभाव है। शांति की खोज में वे सतत नूतन प्रयोग करते रहते हैं। पाश्चात्य विचारक, धर्मगुरु एवं समाज सुधारक भी शांति के उपाय बताने हेतु अपने अनुभवों पर आधारित अनेक पुस्तकों का सृजन कर चुके हैं एवं इनमें निहित प्रयोगों से न्यूनाधिक सकारात्मक परिणाम भी मिले हैं किन्तु भारत में हमारे ऋषि-मुनियों ने अपने गहन चिन्तन पर आधारित एक ऐसी सुपरीक्षित जीवन शैली प्रतिपादित की है जो जीवन में सुख-शांति का पथ प्रशस्त करती है। अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय समाज इस जीवन शैली का अनुपालन कर सुखी एवं शांतिप्रिय जीवन व्यतीत करता रहा किन्तु विगत कुछ शताब्दियों में राजनैतिक एवं आर्थिक पराभव के युग में हमनें अपनी इस जीवन शैली को विस्मृत कर दिया। पिछले वर्षों में भारत में पुनः आर्थिक समृद्धि के नये युग का सूत्रपात हुआ है किन्तु आर्थिक समृद्धि जीवन में सुख शांति का पैरामीटर नहीं होती। यदि आर्थिक समृद्धि ही सुख-समृद्धि एवं सामाजिक शांति का एक मात्र कारक होती तो पश्चिमी देशों में अशांति क्यों होती ? वे सुख की तलाश में भारत की ओर क्यों उन्मुख होते ?

जैनाचार्यों ने अहिंसा, अपरिग्रह एवं अनेकान्त पर आधारित एक ऐसी जीवन शैली प्रतिपादित की है जो विरोधाभासों से रहित, प्रकृति एवं पर्यावरण हितैषी तथा समाज को स्थायित्व प्रदान करने वाली है। जिसमें सहअस्तित्व की भावना है, समस्त जीवों को सुखपूर्वक जीवन जीने का अधिकार है। कार्य करने एवं धनार्जन की प्रेरणा है किन्तु शोषण उत्पीड़न तथा संघर्ष का अभाव है। जिसमें वैचारिक स्वतंत्रता है किन्तु मतभेदों को

दूर करने की व्यवस्था है। यहाँ तक कि परस्पर विरोधी या असम्बद्ध प्रतीत होने वाले विचारों में सामंजस्य बिठाने की अद्भुत क्षमता अनेकान्त में निहित है।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ निदेशक मण्डल के माननीय सदस्य प्रो. पारसमल अग्रवाल इस शोध संस्थान से प्रारम्भ से ही जुड़े रहे हैं। वे जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भौतिक विज्ञानी हैं वहीं जैन दर्शन के गहन गम्भीर अध्येता भी हैं। अपनी प्रशस्त मेघा से आपने अनेकान्त सिद्धान्त द्वारा भौतिक विज्ञान के महत्वपूर्ण सिद्धांतों की व्याख्या के अनुप्रयोगों को चिन्हित करते हुए संत्रस्त मानव समाज को सुख समृद्धि पूर्ण, शांत जीवन जीने की कला इस पुस्तक में विवेचित की है। आपने अनेकान्त को जीवन की समस्याओं का समाधान करने वाले प्रभावी अस्त्र के रूप में प्रस्तुत किया है। सरल, सुबोध एवं प्रवाहपूर्ण भाषा में लिखी गई इस कृति को पढ़ते हुए पाठक इसे स्वयं के जीवन की विवेचना करने वाली कृति के रूप में पाता है। तनाव, चिन्ता, भय या अवसाद ग्रस्त मानव इस कृति के माध्यम में अपने जीवन की गुणवत्ता बढ़ाकर सुखी जीवन जी सकता है।

इस श्रेष्ठ कृति को प्रकाशित करने का अवसर प्रदान कर प्रो. अग्रवाल ने ज्ञानपीठ का ही गौरव बढ़ाया है। एतदर्थ हम कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की ओर से प्रो. अग्रवाल के प्रति आभार ज्ञापित करते हैं।

प्रकाशन में प्राप्त सहयोग हेतु हम अग्रवाल परिवार तथा त्वरित एवं निर्दोष मुद्रण व्यवस्था हेतु सुगन ग्राफिक्स को भी धन्यवाद देते हैं।

पुस्तक की सामग्री एवं प्रस्तुति पर सुधी पाठकों की प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत है।

15.09.2007

डॉ. अनुपम जैन
प्रोफेसर - गणित
मानद सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ

विषय सूची

अध्याय 1	प्रस्तावना	01
अध्याय 2	सामान्य विवेक पर आधारित अनेकान्त द्वारा तनावों में कमी	06
अध्याय 3	भौतिक विज्ञान के अनेकान्त के परिप्रेक्ष्य में हमारे जीवन की समस्याएं	44
अध्याय 4	अध्यात्म के अनेकान्त के परिप्रेक्ष्य में हमारे जीवन की समस्याएं	63
परिशिष्ट	स्याद्वाद एवं अनेकान्त	90

सारणी क्र.1	हमारी भावनाओं एवं सुख.दु:ख का नियंत्रक कौन ?	08
सारणी क्र.2	आलोचना एवं अनेकान्त	14
सारणी क्र.3	चिन्ता एवं अनेकान्त	19
सारणी क्र.4	आक्रोश एवं अनेकान्त	26
सारणी क्र.5	प्रियजन की अप्रसन्नता द्वारा उत्पन्न तनाव एवं अनेकान्त	28
सारणी क्र.6	प्रेम एवं उपकार के बदले में कुछ पाने की अपेक्षा से उत्पन्न तनाव एवं अनेकान्त	31
सारणी क्र.7	अपराध बोध (Guilt) एवं अनेकान्त	36
सारणी क्र.8	न्याय–अन्याय से सम्बन्धित अनेकान्त	43
सारणी क्र.9	मैं कौन हूं ?(प्रश्न एक, उत्तर अनेक)	74
सारणी क्र.10	सामान्य आध्यात्मिक गृहस्थ की मान्यता एवं व्यवहार की अनेकान्तात्मकता के कुछ उदाहरण	88

अध्याय 1

प्रस्तावना

1.1 विषय प्रवेश

कभी अच्छे कार्य की प्रशंसा मिलने की अपेक्षा रहती है किन्तु अच्छा काम अच्छी तरह पूर्ण करने पर भी प्रशंसा मिलना तो दूर अपयश मिल जाता है। कभी हम अच्छा कार्य करने का प्रयास करते हैं किन्तु अच्छा काम पूर्ण न होकर अवांछित एवं अप्रिय फल मिल जाता है। कभी अच्छे लगने वाले व्यक्ति एवं पदार्थ हमसे दूर हो जाते हैं। कभी हम ऐसे व्यक्तियों एवं परिस्थितियों के बीच आ जाते हैं जिन्हें हम पसन्द नहीं करते हैं। हमारे से कम योग्यता वाला व्यक्ति हमारे ही साथ काम करता है। कभी सिफारिश के कारण या अन्य अवैधानिक तरीकों से कम योग्य व्यक्ति का प्रमोशन हो जाता है व हमारा नहीं होता है। इस तरह की स्थितियों में कई व्यक्तियों की मानसिक शान्ति एवं प्रसन्नता प्रभावित हो जाती है। हमारे अपने ही व्यक्तियों के लिए हम बहुत कुछ त्याग एवं तपस्या करते हैं किन्तु कभी ऐसे ही व्यक्ति विश्वासघात करके हमें हानि पहुँचा देते है तो ऐसी स्थिति में कई व्यक्तियों की मानसिक शान्ति भंग हो जाती है। कई व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिन्हें भविष्य में बुरे ही बुरे होने की आशंका रहती है। ऐसे व्यक्तियों से भी प्रसन्नता बहुत दूर रहती है। जीवन में कई व्यक्तियों का ऐसा समय भी आता है जब उन्हें ऐसा लगता है कि उनकी जीवन की गाड़ी उनकी गलती से धीमी चल रही है या उन्होंने सुनहरा अवसर खो दिया है या वे ऐसी गलती कर बैठे हैं जो नहीं करनी चाहिए थी। इन स्थितियों में भी कई व्यक्ति बहुत दुःखी रहते हैं।

उपर्युक्त सभी बातें अच्छा स्वास्थ्य एवं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्नता होने पर भी हो सकती हैं। उपर्युक्त परिस्थितियों के साथ या पृथक् से आर्थिक विपन्नता या शरीर में रोग भी कई व्यक्तियों के जीवन में आते हैं।

कुछ बिरले ही व्यक्ति ऐसे होंगे जिनके जीवन में उपर्युक्त स्थितियों में

से कोई भी स्थिति कभी न आये।

मोटे रूप से देखा जाये तो ये सब कारण जीवन में अप्रसन्नता लाते हैं। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इन कठिन स्थितियों में भी कोई व्यक्ति क्या अनेकान्त को जीवन में अपना कर शान्ति प्राप्त कर सकता है? आगे चलकर हम इसी प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करेंगे। आगे बढ़ने के पूर्व शब्द 'अनेकान्त' के बारे में कुछ चर्चा करना उपयोगी होगा।

अनेकान्त का अर्थ होता है किसी भी घटना के अनेक संभावित पहलुओं की सच्ची समझ। इन अनेक संभावित पहलुओं में कुछ पहलू ऐसे भी हो सकते हैं जो परस्पर विरोधी प्रतीत हों। सामान्य बुद्धि अनेकों पहलुओं को तो स्वीकार कर सकती है किन्तु विपरीत प्रतीत होने वाले पहलुओं को स्वीकार करने में बहुत कठिनाई होती है। अनेकान्त का महत्त्व विपरीत प्रतीत होने वाले पक्षों को स्वीकार करने में अधिक हो जाता है।

विपरीत पक्षों की स्वीकृति केवल अध्यात्म में ही नहीं किन्तु भौतिक विज्ञान में भी होती है। जैसे एक छोटा सा लोहे का टुकड़ा पानी में डूब जाता है किन्तु लोहे का एक विशाल जहाज (बिना किसी अतिरिक्त मशीन के, मात्र लोहे के आकार के आधार पर) पानी मैं तैर सकता है। इस प्रकार भौतिक विज्ञान के अनुसार लोहा पानी में तैरता भी है व डूबता भी है। यह भौतिक विज्ञान के अनेकान्त का ऐसा उदाहरण है जिससे हम भली भांति परिचित हैं।

अनेकान्त मात्र विपरीत पक्षों का कथन ही नहीं करता है अपितु यह भी बताना आवश्यक समझता है कि कौनसा पक्ष किस अपेक्षा से ठीक है। बिना अपेक्षा के विभिन्न पक्षों का कथन विशेष उपयोगी नहीं हो सकता है। चांदी सस्ती भी है व मंहगी भी है, यह कथन बिना अपेक्षा के है अतः विशेष उपयोगी नहीं है। चांदी, पीतल से मंहगी है व सोने से सस्ती है, यह कथन अपेक्षा सहित है, अतः उपयोगी हो सकता है। कई बार हम अपेक्षा का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं समझते है अतः उल्लेख नहीं करते हैं किन्तु उसमें अपेक्षा अवश्य छिपी रहती है। जैसे समाचार पत्र में जब छपता है कि 'चांदी मंहगी', तब वहां सामान्यतया यह अपेक्षा छिपी रहती है कि पिछले दिन की अपेक्षा चांदी के भाव आज ज्यादा हैं। अनेकांत की कुछ अन्य आवश्यक विशेषताएं आगे वर्णित की जा रही हैं ।

भौतिक विज्ञान में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। विस्तृत चर्चा अध्याय 3 में की जा रही है। इस प्रथम अध्याय में अनेकान्तवाद का संक्षिप्त परिचय

इस प्रकार दिया जा रहा है कि पाठक को थोड़ा सा आभास हो सके कि अनेकान्तवाद शब्दों का विलास नहीं है, अपितु इसमें जीवन के तनावों को कम करने की क्षमता है। अवक्तव्यता नाम से प्रचलित अनेकान्तवाद के एक विशेष घटक को भी अनेकान्तवाद के समग्र परिचय की दृष्टि से यहाँ इस प्रथम अध्याय में निरूपित किया जा रहा है। द्वितीय अध्याय में सामान्य विवेक बुद्धि पर आधारित अनेकान्तवाद द्वारा जीवन के तनावों को कम करने की विधियों का वर्णन किया जा रहा है।

आगे अध्याय 3 में भौतिक विज्ञान के अनेकान्तवाद के ऐसे उदाहरण चुने गये हैं जिनसे हमारे तनाव कम करने में मदद मिलती है। समापन करते हुए अध्याय 4 में अध्यात्म विज्ञान के अनेकान्तवाद को निरूपित करते हुए यह बताया गया है कि किस प्रकार आध्यात्मिक अनेकान्तवाद को समझने से जीवन के तनाव बहुत कम हो सकते हैं। यद्यपि प्रथम तीन अध्यायों में अध्यात्म के समर्थन में यत्र-तत्र कुछ कहा गया है किन्तु इन तीन अध्यायों में वर्णन इस तरह किया गया है कि अध्यात्म में रूचि न रखनेवाले पाठक को भी अपने जीवन के तनावों को कम करने की कुछ व्यावहारिक विधियां मिल सके।

1.2 अनेकान्त महत्त्वपूर्ण क्यों है ?

लोहे का टुकड़ा पानी में तैरता भी है व पानी में डूबता भी है। ये दो परस्पर विरोधी कथन भौतिक विज्ञान स्वीकार करता है। ये परस्पर विरोधी कथन महत्त्वपूर्ण तभी हैं जबकि यह बताया जाए कि किस परिस्थिति में लोहा पानी में डूबता है व किस परिस्थिति में तैरता है। भौतिक विज्ञान में इस प्रकार के विश्लेषण से तैरने का सिद्धान्त बनता है।

इसी प्रकार जब हम जीवन की घटनाओं के विभिन्न विरोधी पक्ष विभिन्न अपेक्षाओं के साथ देखते हैं तब जीवन के रहस्य भली भांति समझ में आ सकते हैं व लाभदायक मार्ग मिल सकता है। उदाहरण : ''जीवन आनन्दप्रद भी है व कष्टप्रद भी है'', इस कथन में दो परस्पर विरोधी पक्ष हैं। किन्तु यह कथन अपूर्ण है। अनेकान्त तभी बनेगा जब यह बताया जायेगा कि कौन सा पक्ष किस अपेक्षा से है। किस अपेक्षा से जीवन आनन्दप्रद है व किस अपेक्षा से जीवन कष्टप्रद है। यह जान लेने से हम कष्ट में कमी व आनन्द में वृद्धि का मार्ग ढूंढ सकते हैं।

1.3 अवक्तव्यता

अनेकान्त अनेक पक्ष एवं विरोधी प्रतीत होने वाले पक्षों का एक साथ अस्तित्व स्वीकारता है। इसके अतिरिक्त अनेकान्त की एक विशेषता यह भी है कि अनेकान्त यह भी मानता है कि कुछ पक्ष ऐसे भी होते हैं जिन्हें किसी भी भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता। पदार्थ की इस विशेषता को अवक्तव्यता के रूप में अनेकान्त स्वीकारता है।

जैसे एक व्यंजन का वर्णन विभिन्न अपेक्षाओं से हो सकता है। वह व्यंजन किसी के लिए स्वास्थ्यवर्द्धक भी हो सकता है, तो किसी के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक भी हो सकता है। उसका स्वाद कुछ-कुछ बताया भी जा सकता है तो बहुत कुछ नहीं भी बताया जा सकता है। स्वाद के बारे में अज्ञानता न होने पर भी अवक्तव्यता होती है। उसी प्रकार पदार्थों (जड़ एवं चेतन) के बारे में कई पक्ष ऐसे होते हैं जिनके बारे में अज्ञानता न होते हुए भी अवक्तव्यता होती है।

भौतिक विज्ञान में भी अवक्तव्यता को 20 वीं सदी के क्वाण्टम सिद्धान्त से स्वीकृति मिली है। इसकी विस्तृत चर्चा अध्याय 3 में की जा रही है।

1.4 सम्यक् अनेकान्त एवं मिथ्या अनेकान्त

अनेक पक्षों में यदि कोई भी पक्ष असत्य हो तो अनेकान्त सम्यक् अनेकान्त या सच्चा अनेकान्त नहीं रहेगा। जैसे किसी व्यक्ति को केवल किसी का पुत्र ही मान लेना एकान्त होगा क्योंकि वह किसी का प्रपोत्र भी है तो किसी का नाती भी है। किन्तु एकान्त को अनेकान्त में बदलने हेतु हम उसे किसी का पिता न होते हुए भी पिता मान लें (बिना सही अपेक्षा के) तो यह अनेकान्त भ्रामक होगा। अनुभव तथ्य, तर्क आदि के आधार पर प्रत्येक पक्ष की सत्यता की जाँच किए बिना सभी पक्षों को स्वीकार कर लेना अनुचित होगा।

सम्यक् अनेकान्त को पहचानना कठिन कार्य है। इसकी कसौटी बनाना भी सरल नहीं है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हमारे जीवन से सम्बन्धित हर चौराहे पर सच्चे मार्ग को पहचानने में कठिनाई हो।

एकान्त, सम्यक् अनेकान्त एवं मिथ्या अनेकान्त का अन्तर स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण समझा जा सकता है -

हमारे शहर उज्जैन से इन्दौर जाने के लिए दो रेल-मार्ग हैं। एक बड़ी लाइन (broad gauge) एवं एक छोटी लाइन (meter gauge) । बड़ी लाइन द्वारा इन्दौर को प्रस्थान करने वाली ट्रेन उज्जैन से पूर्व दिशा की ओर रवाना होती है। छोटी लाइन से इन्दौर को प्रस्थान करने वाली ट्रेन उज्जैन से पश्चिम दिशा की ओर रवाना होती है। स्पष्ट है दो विपरीत दिशाओं में यात्रा प्रारंभ करती हुई दो ट्रेनें समान लक्ष्य इन्दौर को पहुँचती हैं। इस स्थिति के होते हुए भी यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि चूंकि पश्चिम दिशा की ओर रवाना होने वाली ट्रेन इन्दौर जाती है अतः पूर्व दिशा की ओर रवाना होने वाली ट्रेन इन्दौर नहीं पहुँच सकती है तो यह मान्यता एकान्त होगी। दोनों प्रकार की ट्रेनों की स्वीकृति सम्यक् अनेकान्त होगी। और इसके आधार पर ही कोई यह कहे कि प्रत्येक ट्रेन इन्दौर जाती है तो यह कहना मिथ्या अनेकान्त होगा।

अनेकान्तवाद का उद्घाटन करते हुए आचार्यों का मुख्य उद्देश्य आत्म-तत्व को समझाने का था। इन्द्रिय सुखों से परे आत्मिक सुख का आस्वादन कराने हेतु आचार्यों ने आत्मतत्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से विस्तार में समझाया है। यही अनेकान्तवाद जो गूढ़ रहस्यों को समझाने में आगे आया है सामान्य जीवन से संबन्धित कार्यकलापों में भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। व्यक्ति को अनेकान्तवाद के उपयोग द्वारा किस प्रकार जीवन में शान्ति एवं समताभाव प्राप्त हो सकते हैं इस तथ्य को कुछ उदाहरणों द्वारा यहां वर्णित किया जा रहा है। अध्यात्म के क्षेत्र में आने के बाद जीवन की कई समस्याएं समस्याएं नहीं रहती हैं। अतः अध्यात्म के क्षेत्र में जो पहुँच जाते हैं, उनकी कठिनाइयों या समस्याओं की चर्चा हम यहाँ नहीं कर रहे हैं। हम यहां ऐसे आम इन्सान की समस्याओं की बात कर रहे हैं जिसे अध्यात्म की रूचि अत्यल्प है, वर्तमान में रोटी की समस्या भी खास नहीं है, किन्तु मान-अपमान, भविष्य की चिन्ता, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, आलस्य, अहंकार, क्रोध, लालच, अमीर बनने की तीव्र लालसा आदि से वह तनावग्रस्त है। हमें यह देखना है कि ऐसे समस्याओं वाले आज के आम इंसान को समता एवं शान्ति प्राप्त कराने में अनेकान्तवाद अध्यात्म की गहराई में ले जाने के अतिरिक्त व्यावहारिक जीवन में किस प्रकार उपयोगी हो सकता है।

अध्याय 2

सामान्य विवेक पर आधारित अनेकान्त द्वारा तनावों में कमी

2.1 हमारी भावनाएं एवं अनेकान्त

बहुधा निम्नांकित प्रकार के कथन हम बोलते हैं एवं सुनते हैं :

1) मुझे तुम गुस्सा मत दिलाओ।

2) आज सुबह से ही पापा की फटकार ने मुझे व्यथित कर दिया है।

3) आपने जो शब्द मुझे कहे उनसे मेरे दिल को बहुत ठेस पहुँची।

4) उसकी उपस्थिति मात्रा ही मुझे दुःखी एवं क्रोधित कर देती है।

5) बड़ा मायूस मौसम है।

कई वाक्य उक्त प्रकार के हम बोलते हैं एवं सुनते हैं। यदि हम बोलने एवं सुनने के साथ ऐसा मानते भी हैं तो यह एकांतवादी दृष्टिकोण हमारी शान्ति, प्रसन्नता एवं समता को कई रूपों में प्रभावित करेगा। इन सारे कथनों में यह एकांत मान्यता गर्भित है कि अपनी भावनाएं एवं अपने सुख दुःख दूसरे पदार्थों एवं व्यक्तियों के हाथ में हैं।

हम बचपन से ही उपर्युक्त प्रकार के वाक्य सुनते आये हैं जिनसे हमारे संस्कार ही ऐसे बन गये हैं कि हम हमारी भावनाओं एवं हमारे सुख दुःख की जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेकर दूसरों पर थोपना चाहते हैं।

हमारे मकान के दरवाजे पर काल बेल लगी है। बाहर का कोई भी व्यक्ति उसका बटन यदि दबादे तो हमारे कमरे की घण्टी बज जाती है। परन्तु हमारे मकान के आर्किटेक्ट ने यह व्यवस्था भी बनाई है कि हमारे कमरे के अन्दर भी एक स्वीच ऐसा लगाया जिसे यदि ऑफ कर दें तो बाहर का बटन कितना ही कोई दबाये हमारे कमरे की घण्टी नहीं बज सकती है। ऐसा ही अन्दर का स्वीच क्या हमारे जीवन में नहीं बन सकता है? यह तभी संभव है जब ''अपनी भावनाएं, अपने सुख-दुःख दूसरे पदार्थों एवं व्यक्तियों के हाथ में

हैं'' ऐसी एकान्त मान्यता को पहले दूर करें। इस एकांत को हमें अनेकांत में बदलना होगा। उक्त एकांत कथन किसी अपेक्षा से माना जा सकता है किन्तु साथ ही यह भी स्वीकारना होगा कि, ''मेरी भावनाओं एवं मेरे सुख-दुःख का नियंत्रक मैं हूँ। यदि मैं अप्रसन्न होने के लिए मना कर दूँ तो बाहरी पदार्थ या अन्य व्यक्ति मुझे अप्रसन्न होने या क्रोध करने के लिए मजबूर नहीं कर सकते हैं।''

दूसरे व्यक्ति या पदार्थ हमारी भावनाओं को नियंत्रित करते हुए जब भी जहां भी दिखाई देते हैं वहां विश्लेषण करने पर हम पायेंगे कि हमने ही उन्हें हमें नियंत्रित करने का अधिकार दिया है। जब हम हमारे द्वारा दिये गये अधिकार को नहीं पहचानते तब यह दिखाई देता है कि दूसरे हमें क्रोध आदि दिलाते हैं या नियंत्रित करते हैं।

इस प्रकार जब भी हम यह मानें या कहें कि दूसरे व्यक्ति या पदार्थ मुझे सुखी-दुखी कर सकते हैं, प्रसन्न कर सकते हैं या क्रोधित कर सकते हैं तब इसे एकांत कथन मानते हुए पहले इस कथन की अपेक्षा ढूंढते हुए इस रूप में समझें कि यदि हम दूसरे व्यक्तियों एवं पदार्थों को हमें नियंत्रित करने का हमारे द्वारा ही दिया गया अधिकार न पहचाने तो हमे ऐसा लगेगा कि दूसरे व्यक्ति या पदार्थ हमें नियंत्रित करते हैं।

इसके विपरीत यदि हम यह पहचान लें कि हम सुख-दुख आदि हमारे स्वयं के विचारों के आधार पर ही अनुभव करते हैं व हमारे विचारों के नियंत्रक हम ही हैं तब इस अपेक्षा से हम यह कह सकेंगे कि हमारी भावनाओं के नियंत्रक हम स्वयं हैं।

दूसरों को अधिकार देने या न देने का अर्थ दूसरों के नियंत्रित करने का नहीं है। ऐसा नहीं है कि कोई हमें हमारी आज्ञा से गाली देता है या आज्ञा न हो तो गाली नहीं देता है। गाली न देने या देने की दूसरे व्यक्ति की स्वतंत्रता उस दूसरे व्यक्ति के पास है। यदि हम हमारे विचारों में दूसरे व्यक्ति को बहुत महत्त्व देते हैं या किसी रूप में उससे डरते हैं तो वह गाली हमें क्रोधित कर सकती है। अर्थात् दूसरे की गाली हमें क्रोधित करे या न करे यह हमारे हाथ में है। इस दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है कि गाली में कोई शक्ति नहीं थी किन्तु हमारे द्वारा दी गई शक्ति से ही दूसरे की गाली हमें क्रोधित बना सकती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गाली को हमें क्रोधित करने का अधिकार हमसे ही मिला।

दुःख के कारण आते ही दुःखी हो जाना व फिर प्रसन्न होने के लिए किसी सुख के कारण की प्रतीक्षा करना अधिकांश व्यक्तियों की आदत बन चुकी है। अनेकान्त समझने का तत्काल लाभ यह लिया जा सकता है कि प्रसन्न होने के लिये प्रसन्नता के कारणों की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। यह प्रयोग सरलता से किया जा सकता है कि प्रसन्नतादायक कारणों की प्रतीक्षा किये बिना ही प्रसन्नता दायक विचारों द्वारा प्रसन्नता अनुभव की जा सकती है।

सारणी क्र. 1

हमारी भावनाओं एवं सुख-दुःख का नियंत्रक कौन ?

एकांत	मुझे अन्य व्यक्ति क्रोधित करते हैं। मेरा सुख-दुःख दूसरे पदार्थों एवं अन्य व्यक्तियों के हाथ में है।
अनेकांत	किसी अपेक्षा से यह कहा जा सकता है कि मुझे अन्य व्यक्ति क्रोधित करते हैं या अन्य व्यक्ति एवं पदार्थ मेरे सुख-दुःख को प्रभावित करते हैं। किन्तु महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि मेरी भावनाओं एवं सुख-दुःख का नियंत्रक मैं हूँ। यदि मैं अप्रसन्न होने के लिए मना कर दूँ तो बाहरी पदार्थ या अन्य व्यक्ति मुझे अप्रसन्न होने या क्रोधित होने के लिए मजबूर नहीं कर सकते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये तो विज्ञान भी यही कहेगा कि दूसरे व्यक्ति के कर्कश शब्दों में ऐसा कोई रसायन नहीं होता है जिससे हमें क्रोध पैदा हो ही। हमारे मस्तिष्क में उपस्थित रसायन हमारे क्रोध को प्रभावित कर सकते हैं किन्तु ये रसायन भी हमारे शरीर की ग्रन्थियों (glands) के स्राव पर निर्भर करते हैं। चूंकि इन ग्रन्थियों का स्राव हमारी विचाराधारा एवं चिन्तन पर बहुत कुछ निर्भर करता है अतः कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि हमारी प्रसन्नता, क्रोध आदि से संबंधित मनोदशाओं के मुख्य नियंत्रक हम हैं। हमारी मनोदशा पर दूसरों का नियंत्रण भी जहां दिखाई देता है वहाँ उसका मुख्य कारण यह है कि हमने ही उन्हें नियंत्रित करने का अधिकार जाने-अनजाने में दिया है। दूसरों को यह अधिकार हमने दिया है तो यह अधिकार वापस लिया भी जा सकता है।

अमरीका के डॉ. वेन डायर उनकी विश्व प्रसिद्ध पुस्तक, 'Your Erroneous Zones', में लिखते हैं –

"You and only you control your thinking apparatus (other than under extreme kinds of brain washing or conditioning experimentation settings which are not a part of your life). Your thoughts are your own, uniquely yours to keep, change, share, or contemplate. No one else can get inside your head and have your own thoughts as you experience them. You do indeed control your thoughts, and your brain is your own to use as you so determine."

डॉ. वेन डायर के इस कथन का भावार्थ यह है कि आप और केवल आप आपके मस्तिष्क के नियंत्रक हैं। आपके सिर में कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता है। आपके मस्तिष्क का उपयोग आप जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं।

एक निरक्षर समाज का व्यक्ति यह मानता है कि वह पढ़–लिख नहीं सकता है। कहीं से कोई नोटिस मिला है या नोटिस का उत्तर देना है तो वह किसी पढ़े–लिखे व्यक्ति के पास जाता है। कभी कोई व्यक्ति उसे पढ़ने की प्रेरणा देता है तो हँस कर टाल देता है या यह कह देता है कि 'पढ़ना–लिखना उसके लिए संभव नहीं है, यदि संभव होता तो अब तक उसके परिवार के लोग या पास–पड़ोसी क्यों अनपढ़ रहते?' कभी कोई बहुत प्रेरणा देता है तो कुछ समय निकालकर एक–दो अक्षर सीख भी लेता है किन्तु विश्वास में कमी होने के कारण आलस्य आ जाते हैं व थोड़े ही दिनों में जो कुछ सिखा है वह भी भूल जाता है। नतीजा यह होता है कि उसकी यह मान्यता और भी पक्की हो जाती है कि वह पढ़–लिख नहीं सकता।

यही स्थिति सारणी क्रं.1 के एकांत से निकलकर अनेकांत को स्वीकारने की है। पहले तो विश्वास ही नहीं होता है कि दूसरे व्यक्ति के द्वारा मुझे भला–बुरा कहे जाने पर भी मैं चाहूँ तो मुझे क्रोध हो और न चाहूँ तो मुझे क्रोध न हो व यदि किसी ने बहुत आग्रह करके विश्वास दिलाने का प्रयास किया भी तो अभ्यास एवं विश्वास के अभाव में सफलता हाथ नहीं लगती है। जैसे अनपढ़पन को दूर करने के लिए विश्वास के साथ पढ़ने का अभ्यास करना होता है उसी तरह अपने मनोभावों का नियंत्रण अपने हाथ में लाने के लिए भी विश्वास के साथ अभ्यास की आवश्यकता होती है। वीणा बजाना हो या तैरना हो, टाइपिंग हो या खाना बनाना, बिना अभ्यास के कुछ भी हाथ नहीं लगता है।

2.2 हमारे चिन्तन में निम्नांकित प्रकार की मान्यताएं हो सकती हैं –

(क) मेरा कद कम है अतः मुझे सभी लोग असुन्दर समझते होंगे, अतः मैं असुन्दर हूँ।

(ख) मेरे पिताजी बहुत सम्पत्ति छोड़ गये। मैंने इतनी सम्पत्ति होते हुए भी धन्धा इतना ज्यादा नहीं बढ़ाया है जितना बढ़ाना चाहिए था। अतः मुझे सभी लोग अयोग्य समझते होंगे, अतः मैं अयोग्य हूँ।

(ग) मैं अपने आपको कैसे क्षमा कर सकता हूँ जबकि मैंने बहुत हीं अच्छा अवसर खो दिया।

(घ) मैं ऐसा बीमार हूँ कि आमदनी कम करता हूं व खर्च ज्यादा करता हूं। अतः दूसरे व्यक्ति मुझे भार रूप समझते होंगे अतः मैं समाज पर या परिवार पर भार हूँ।

(च) जो पुस्तक मेरी अभी प्रकाशित हुई है उसके बारे में कुछ पाठकों के पत्र यह कहते हैं कि पुस्तक अच्छी नहीं है, अतः लगता है कि पुस्तक सचमुच में अच्छी नहीं है। कुछ प्रशंसाएं भी लिखी गई हैं किन्तु वे प्रशंसा पत्र तो शायद शिष्टाचार के नाते ही लिख दिये होंगे या कुछ कम जानकार लोगों को कमियां नजर नहीं आई हैं अतः प्रशंसा कर दी है या कुछ बड़े विद्वानों ने मेरा उत्साह वर्धन करने हेतु प्रशंसा कर दी है।

(छ) मैं बहुत व्यस्त हूँ अतः समय पर भोजन नहीं कर सकता हूँ। व्यायाम के लिए समय मिलता ही नहीं है। ध्यान प्रार्थना आदि तो वृद्धावस्था में जब समय मिलेगा तब देखा जायेगा।

और भी कई उदाहरण इस तरह के लिखे जा सकते हैं। इन उदाहरणों में यह एकान्त मान्यता छिपी हुई है कि, 'मैं तुच्छ हूँ व दूसरे व्यक्ति भी मुझे तुच्छ ही समझते होंगे।' इसके पीछे तर्क यह रहता है कि मैं अपूर्ण हूँ अतः तुच्छ हूँ। मैं उच्चतम आदर्श स्तर तक नहीं पहुँच पाया हूँ व नहीं पहुँच पाऊँगा अतः तुच्छ हूँ। मैं तुच्छ हूँ अतः समय पर भोजन आदि पाने का पात्र नहीं हूँ।

इस प्रकार की मान्यता बनने के कई कारण हैं। बचपन से ही कई माता–पिता बच्चे को यह बताते रहते हैं कि बच्चा कितनी गलतियाँ करता रहता है, जबकि पड़ोसी का अमुक बच्चा कितना होशियार है। बचपन से ही कई मित्रगण भी एक दूसरे की कमियाँ दिखाकर दूसरे को छोटा सिद्ध करते रहते हैं।

बहुत कम ऐसे होते हैं जिन्हें माता–पिता, भाई–बहनों एवं मित्रों से ऐसा सन्देश न मिला हो। किसी अपेक्षा से बड़ों से एवं मित्रों से अपनी गलतियाँ मालूम होते रहना बहुत उपयोगी भी है किन्तु ये ही बातें यदि ठीक तरह से ग्रहण नहीं की जायें तो हीन भावना का कारण बन जाती हैं। वर्षा होना अच्छी बात है किन्तु यही बरसात बिना छत के मकान वाले के लिए या सछिद्र छत वाले के लिए हानिकारक हो जाती है।

अतः यह कला आवश्यक है कि हम आलोचना, उपहास आदि की वर्षा के पानी का लाभ तो ले सकें किन्तु उससे हमारा आत्मविश्वास नहीं बह जाये। इसका बहुत अच्छा छाता अनेकान्त प्रदान कर सकता है।

सोने का आभूषण थोड़ा सा टूट भी जाता है तो हमारी निगाह में उसकी कीमत कम नहीं होती है। हम उतनी ही सुरक्षा के साथ उसे लॉकर में या सुरक्षित स्थान पर रखते हैं। यदि कोई आभूषण नई फैशन के अनुसार न हो तो भी उसकी कीमत हमारी निगाह में कम नहीं होती है – क्योंकि हम जानते हैं कि इसको चाहें तो नई फैशन में भी बदलवा सकते हैं। क्या यही बात हम हमारे मनुष्यपने या आत्मा पर नहीं लागू कर सकते? जरा विचार करें कि निम्नलिखित विकल्पों में से कौन सा सही विकल्प है ?

(1) हम असली कीमत हमारे मनुष्यपने या आत्मा की मानें व अन्य की आलोचनाओं पर ध्यान न दें।

(2) हम हमारी शरीर की शक्ति, सुन्दरता, बुद्धि, चतुराई, धन, परिवार, मित्रगण आदि के आधार पर अपना मूल्यांकन करें।

(3) अनेकान्तवादी दृष्टिकोण अपनाएं। हमारे विकास हेतु अपनी कमियों एवं मित्रों की आलोचनाओं को नजरअंदाज भी न करें व इन आलोचनाओं के आधार पर अपने को छोटा या हीन या तुच्छ भी न समझें क्योंकि हमारा असली मूल्य हमारे मनुष्यपने या आत्मा का है।

यदि हम केवल उक्त पहला विकल्प ही अपनाते हैं व दूसरों की आलोचना नहीं मानते हैं व अपने विकास पर ध्यान नहीं देते हैं तो जीवन का विकास प्रभावित हो सकता है। व यदि दूसरों के कथनों के आधार पर तथा अपनी भौतिक उपलब्धियों के आधार पर ही अपना मूल्यांकन करते हैं तो हीन भावना से ग्रसित होकर दुःखी होने के मार्ग पर हो जायेंगे, अतः उक्त तीनों में से तीसरा विकल्प भौतिक विकास की दृष्टि से उचित होगा।

अच्छा मित्र वही कहलाता है जो सदैव हर परिस्थिति में मित्र के प्रति मित्रता का भाव रखता हो। क्या हम स्वयं के अच्छे मित्र नहीं हो सकते हैं? यदि हम स्वयं स्वयं को हर अवस्था में प्यार करते हैं एवं स्वयं से घृणा नहीं करते हैं तो हम कह सकते हैं कि हम स्वयं के भी अच्छे मित्र हैं। यह मित्रता निश्चित ही प्रसन्नता प्रदान करती है।

कुछ सुझाव

(1) हम स्वयं यदि स्वयं को तुच्छ, या हीन नहीं समझेंगे तो दूसरों की आलोचना से दुःखी नहीं होंगे। दूसरे लोग जब हमारी आलोचना करते हैं तो वह आलोचना दुःख का कारण तभी बनती है जब उसमें हाँ में हाँ मिलाते हुए हम स्वयं भी स्वयं की आलोचना कभी किस आधार पर और कभी किस आधार पर करते रहें या दूसरों के कथनों के आधार पर हर समय अपने आप का विश्लेषण विभिन्न रूपों में करते रहें।

रेल मोटर में सफर करते हुए अपने पास जेब में रखे हुए रूपयों की सुरक्षा रखना आवश्यक है। किन्तु यदि हम बार–बार अपनी जेब को संभालते रहें तो हमारी यात्रा कष्टप्रद हो सकती है व जेब कटने की संभावना भी बढ़ सकती है। ट्रेन में हम जब सफर कर रहे हों व कोई व्यक्ति यदि आकर यह कहे कि ''भाई साहब ! आपकी जेब संभाल कर रखना, कहीं कट न जाए''। तब यह सुनकर हमारी जेब को संभालना क्या उचित है ? इसका उत्तर यही होगा कि उचित नहीं है।

इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति की आलोचना सुनकर तत्काल अपने व्यवहार या उपलब्धि का विश्लेषण करना कहां तक उचित है ? इसका उत्तर भी यही होगा कि उचित नहीं है।

अतः आलोचना से उत्पन्न दुःख से बचने का प्रथम उपाय यह है कि आलोचना सुनते ही स्वयं अपनी आलोचना का विश्लेषण करना शुरू न करें। हम हमारा विश्लेषण समय–समय पर नियमित रूप से करते रहें किन्तु लगातार हर समय तो हमें हमारे मनुष्यपने या शाश्वत आत्मा को कीमती मानते हुए अन्य उपलब्धियों एवं व्यवहार के आधार पर मूल्यांकन एवं विश्लेषण नहीं करते रहना चाहिए।

(2) ट्रेन में यात्रा करते हुए सभी सहयात्रियों पर पूर्ण विश्वास रखना भी बुरा एवं कष्टदायक हो सकता है व पूर्ण अविश्वास रखना भी कष्टदायक हो सकता है। हमारा सहयात्री यदि थोड़ी सी सुविधा के कारण हमारे सूटकेस को

थोड़ा सा खिसकाने के उद्देश्य से छू लेता है तो हमें ऐसा नहीं लगता है कि यह सहयात्री हमारा सूटकेस उठाकर ले जाना चाहता है। यही बात हमारी जीवन की यात्रा पर लगनी चाहिए। किसी प्रयोजन से हमारा मित्र या परिचित कभी हमारे बारे में कुछ ऐसा कहता है कि उसका उद्देश्य आलोचना का नहीं रहता है किन्तु हमें ऐसा लग सकता है कि यह व्यक्ति हमारी आलोचना करना चाहता है। इस प्रकार की आलोचना के आभास के दुःख से बचने हेतु थोड़ा अभ्यास आवश्यक होगा। जब-जब ऐसी स्थिति से कष्ट हो तब-तब यह प्रतिप्रश्न स्वयं से करना चाहिए कि ''क्या इन शब्दों का अर्थ आलोचना के अतिरिक्त दूसरा नहीं हो सकता है ?'' इस प्रकार के प्रयास प्रारंभ में ध्यान पूर्वक करने की आवश्यकता होगी किन्तु अभ्यास के बाद सब कुछ सहज में ही हल होता रहेगा।

(3) प्रतिदिन कुछ मिनटों के लिये हम यह याद करने का अभ्यास करें कि हमारी असली कीमत हमारे मनुष्यपने या आत्मा की है। दिन में एक से अधिक बार यह तथ्य ध्यान में लाने का प्रयास किया जाना उपयोगी हो सकता है।

(4) उचित भोजन, विश्राम, प्रार्थना, ध्यान आदि के लिए उचित समय निकालने का प्रयास करना चाहिए। स्वयं को तुच्छ मानने वाला व्यक्ति भोजन, विश्राम, प्रार्थना आदि पर ध्यान नहीं देता है। इन बातों पर ध्यान देने से स्वयं की महत्ता जाग्रत होती है।

(5) आत्मविश्लेषण के लिये प्रतिदिन या प्रतिसप्ताह कुछ समय निश्चित किया जाना चाहिये। आत्म विश्लेषण हर समय या जब-तब नहीं करते रहना चाहिये।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक नार्मन विन्सण्ट पील उनकी पुस्तक Inspiring Messages For Daily Living में लिखते हैं

"Don't wear yourself out with yourself. ... Much tiredness is the result of extreme self-preoccupation. Introspection, concern about comfort, prerrogatives and position can consume a large share of one's energy."

इसका भावार्थ यह है कि स्वयं के बारे में अधिक सोच सोच कर थको मत। बहुत ज्यादा थकान स्वयं के मामले में ही व्यस्त रहने पर आती है। पदवी का ख्याल, विशेष महत्त्व पाने का ख्याल, आराम एवं सुविधा का ख्याल, आत्म विश्लेषण आदि से व्यक्ति की बहुत ज्यादा शक्ति खर्च हो सकती है।

सारणी क्रं. 2

आलोचना एवं अनेकान्त

एकांत	हम हमारे शरीर की शक्ति, सुन्दरता, बुद्धि, चतुराई, धन, परिवार, मित्रगण आदि के आधार पर ही स्वयं का मूल्यांकन करें। जहाँ भी जब भी इनमें हमें कोई कमी बताये या हमें लगे तब हम दुःखी हों।
अनेकांत	अपने सुधार हेतु अपनी कमियों एवं मित्रों की आलोचनाओं को नजरअन्दाज भी न करें व इन आलोचनाओं के आधार पर अपने को छोटा या हीन या तुच्छ भी नहीं समझें, क्योंकि हमारा असली मूल्य हमारे जीवन या आत्मा का है।

2.3 चिन्ता एवं अनेकान्त

चिन्ता एक व्यापक समस्या है जिससे हम सभी अच्छी तरह परिचित हैं। चिन्ता के पीछे यह चिन्तन रहता है कि कुछ क्षण बाद या कुछ समय बाद या कुछ वर्षों बाद ऐसा कुछ हो सकता है या होने वाला है जिसे हम पसंद नहीं करते हैं या जिसे हम सहन नहीं कर सकेंगे। रोटी, कपड़ा, मकान, परिवार, मित्रगण, यश, स्वास्थ्य आदि की चिन्ता विभिन्न रूपों में विभिन्न व्यक्तियों को सताती है। एक चिन्ता हल होने के बाद दूसरी चिन्ता सामान्यतया चिन्ता करने वाले व्यक्ति के पास आ जाती है।

किसी समस्या के बार-बार चिन्तन करके दुःखी होने का प्रमुख कारण हमारी यह एकान्त मान्यता है कि हमारे भविष्य के संभावित संकटों के बारे में जितना अधिक हम सोचेंगे उतना अधिक सुरक्षित एवं आनन्दप्रद जीवन हमारा हो सकेगा।

''जितना अधिक सोचेंगे उतना अधिक लाभ होगा'', यह मान्यता हमें ज्यादा सोचने के लिए प्रेरित करती है। कभी-कभी तो ऐसी स्थिति बन जाती है

कि हम सोचते सोचते थक जाते हैं व सोचना बंद करना चाहते हैं किन्तु हमारे सोचने पर ब्रेक नहीं लग पाता है। ऐसी स्थिति बहुत दुखकारी हो जाती है। जब तक आगामी विपत्ति का एहसास है व यह मान्यता है कि समस्या का सामना करने का श्रेष्ठतर उपाय थोड़ा सा और सोचने पर निकलने वाला है तब तक मस्तिष्क उस समस्या को सोचना बन्द नहीं कर सकता है।

जब भी हम किसी चिन्ता में डूबे हों तब स्थिति का विश्लेषण करें तो हमें चिन्ता के निम्नांकित तीन अंग नजर आएंगे।

(1) आगामी विपत्ति की संभावना

(2) यह मान्यता कि आगामी विपत्ति को टालना या कम करने का उपाय मेरे इस हाड़ -मांस के पुतले को ही ढूंढना है।

(3) यह मानना कि अधिक सोचने से अधिक अच्छा उपाय मिल सकता है।

इन तीनों अंगों में से किसी भी अंग के कमजोर होने से चिन्ता भी कमजोर हो जाती है। यहां हम यह देखेंगे कि समस्या के अनेकान्तमयी विश्लेषण से ये तीनों कमजोर हो सकते हैं।

जीवन में हमने कई प्रकार की कई चिन्ताएं की होंगी। हमारे पिछले अनुभवों के आधार पर हम यह जानते हैं कि अधिकांश चिन्ताएं व्यर्थ ही सिद्ध हुईं। क्योंकि विपत्तियों की जैसी कल्पनाएं की थी वैसी विपत्तियाँ आईं ही नहीं। अतः जब हम यह सोचें कि विपत्ति आने की संभावना है तब साथ में इसका विरोधी पक्ष भी याद रखें कि विपत्ति नहीं आने की संभावना भी बहुत है।

विपत्ति आने की संभावना के साथ साथ विपत्ति नहीं आने की संभावना भी है। इस अनेकान्त के अतिरिक्त विपत्ति का एक अन्य पहलू भी ध्यान देने योग्य है। थोड़ा विचार करें कि जिसे हम विपत्ति मान रहे हैं वह क्या सचमुच में विपत्ति ही है ?

एक विद्यार्थी परीक्षा में असफल होने को एक बड़ी विपत्ति मान रहा है। क्या परीक्षा में असफल होना प्रत्येक के लिए सचमुच में विपत्ति है ? क्या परीक्षा में असफल होते ही जीवन सचमुच में पिछड़ जाएगा ? क्या ऐसे उदाहरण हम नहीं देखते हैं जहाँ परीक्षा में असफल होने वाले विद्यार्थी आगे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बहुत सफल हुए हैं ? अन्य विपत्तियों के बारे में भी इसी प्रकार के प्रश्न किये जा सकते हैं। सभी प्रश्नों का उत्तर यही मिलेगा कि

जिसे हम विपत्ति समझ रहे हैं वह जरूरी नहीं है कि विपत्ति रूप ही सिद्ध हो। विपत्ति प्रतीत होने वाली घटना आगे चलकर लाभप्रद भी सिद्ध हो सकती है। मनोवैज्ञानिक यहाँ तक लिखते हैं कि प्रत्येक हानिकारक घटना में उतनी ही या उससे अधिक लाभ का बीज रहता है **(within every adversity there is a seed of an equivalent or greater benefit)**

सारांश यह है कि जिस आगामी विपत्ति की चिन्ता हम कर रहे हों उस विपत्ति के बारे में दो प्रकार से अनेकान्तमय विचार करने से चिन्ता कम हो सकती हैः प्रथमतः जहाँ विपत्ति आने की संभावना प्रतीत होती है वहाँ यह भी देखा जा सकता है कि विपत्ति न आने की संभावना भी बहुत कुछ रहती है। दूसरी बात यह भी समझी जा सकती है कि जिसे हम विपत्ति मान रहे हैं वह अन्ततोगत्वा लाभकारी भी सिद्ध हो सकती है।

उपर्युक्त पंक्तियाँ लिखने के पीछे उद्देश्य यह नहीं है कि विद्यार्थी प्रयास कम करे। हमारा उद्देश्य तो उसकी चिन्ता कम कराने का है। इस हेतु उसे यह अनेकान्त समझना है कि भविष्य का सम्पूर्ण भार स्वयं के हाड़-मांस के पुतले पर ही न होकर अन्य ज्ञात एवं अज्ञात घटकों पर भी है। उसके हित में तो यह है कि वह अन्य ज्ञात एवं अज्ञात घटकों के क्रिया कलाप, जो कि उसके हाथ में नहीं हैं, के सम्बन्ध में आशावादी यानी सकारात्मक दृष्टिकोण रखे।

इस वर्णन को पढ़ने के बाद पाठक के मन में यह प्रश्न जाग्रत हो सकता है कि यदि विद्यार्थी यह मानने लगे कि परीक्षा में सफलता केवल उसके प्रयास पर ही निर्भर नहीं करती है अपितु अन्य ज्ञात एवं अज्ञात घटकों पर भी निर्भर करती है तो विद्यार्थी के प्रयास कमजोर हो जायेंगे। अतः विद्यार्थी के हित में यही है कि वह यही माने कि परीक्षा में सफलता उसके प्रयास पर ही निर्भर करेगी।

इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि निष्पक्ष भाव से पहले तो हम स्वयं स्थिति का विश्लेषण करके सच्चाई जानें। मूल तथ्य को जानने के बाद जो पढ़ाई एवं प्रयास के प्रति लापरवाह है उसे प्रयास की महत्ता पर जोर देकर प्रयास करना उचित है व जो विद्यार्थी सबकुछ छोड़कर पढ़ाई के प्रयास में ही दत्तचित्त है व फिर भी असफलता के भय से डरा हुआ है उसे पढ़ाई के प्रयास के अतिरिक्त अन्य घटकों की महत्ता बताने की आवश्यकता है।

पढ़ाई ही नहीं अपितु जीवन के कई क्षेत्रों में ऐसे व्यक्ति हमें दिखाई दे सकते हैं जो किसी भी समस्या का मुकाबला करने हेतु युद्धस्तर की तैयारी

करने के उपरान्त भी भयभीत होते हैं व उन्हें लगता है कि न मालूम क्या होगा। उन्हें इतनी तैयारी के बाद भी लगता है कि अभी प्रयास बहुत कम हुआ है। वे पूर्ण नियंत्रण अपने पास चाहते हैं जो कि संभव नहीं है। ऐसे व्यक्ति यदि संतुलन खो दें व बीमार हो जायें तो कोई आश्चर्य नहीं है। सचमुच के युद्ध के मैदान में भी समझदार सेनानायक अपनी तरफ से पूरी तैयारी करने के उपरान्त तनाव रहित होने का प्रयास करता है। वह यह भी जानता है कि अचानक आँधी, तूफान, वर्षा, किसी भी सैनिक की छोटी सी भूल या छोटी सी सूझबूझ, जंगली जानवर, यांत्रिक त्रुटि आदि ऐसे कई ज्ञात एवं अज्ञात प्रभावी घटक हैं जिन पर 100 प्रतिशत नियंत्रण संभव नहीं है। अतः जिन पर नियंत्रण संभव ही नहीं है उनके बारे में आशावादी बनने में ही लाभ है।

अतः चिन्ता कम करने हेतु इस अनेकान्त तथ्य को स्वीकारना होगा कि आगामी समस्या का हल मुझ पर भी निर्भर करता है अतः सभी संभव प्रयास किये जाने चाहिए, एवं मेरे नियंत्रण से परे सृष्टि के अन्य ज्ञात एवं अज्ञात घटकों पर भी निर्भर करता है अतः अपने नियंत्रण से परे अन्य ज्ञात एवं अज्ञात घटकों के प्रभाव के बारे में धनात्मक एवं आशावादी दृष्टिकोण भी रखना चाहिए। लेटर बॉक्स में पत्र डालने के बाद या पत्र की पोस्ट ऑफिस में रजिस्ट्री कराने के बाद पत्र के पहुँचने के बारे में जिस प्रकार हम आश्वस्त रहते हैं या धनात्मक दृष्टिकोण रखते हैं वैसे ही अपनी ओर से प्रयास के उपरांत अपने नियंत्रण से परे सृष्टि के अन्य घटकों के प्रति आशावादी दृष्टिकोण उपयोगी हो सकता है। धनात्मक या आशावादी दृष्टिकोण की महत्ता बताते हुए एक अमरीकी मनोवैज्ञानिक, 'The Power of Positive Thinking' में लिखते हैं –

"A man who is self reliant, positive, optimistic, and undertakes his work with the assurance of success magnetizes his condition. He draws to himself the creative powers of the universe."

इसका भावार्थ यह है कि जिसे स्वयं पर भरोसा हो, जो धनात्मक व आशावादी हो एवं सफलता के विश्वास के साथ कार्य करता हो ऐसा व्यक्ति अपनी परिस्थितियों पर ऐसा चुम्बक लगा देता है कि सृष्टि की सृजनात्मक शक्तियाँ उस तक खींची चली आती हैं।

चिन्ता के तीसरे अंग के अन्तर्गत चिन्ताशील व्यक्ति की यह मान्यता रहती है कि वह जितना अधिक सोचेगा उतना अधिक अच्छा हल समस्या का निकलेगा। यह भी एकान्त मान्यता है। पहली बात तो यह है कि चिन्ता में

उलझा हुआ व्यक्ति जब अपनी समस्या के बारे में सोचता है तब वह समस्या के समाधान के बारे में तो कम व संभावित विपत्ति के बारे में अधिक सोचता है। विपत्ति के अनेक रूप जब उसके चिन्तन में आते हैं तब विपत्ति और ज्यादा प्रतीत होने लगती है। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करना उचित होगा।

एक व्यक्ति को सोते समय अचानक विचार आया कि उसके कार का ब्रेक थोड़ा कमजोर हो गया हैं अतः किसी मैकेनिक को दिखाकर ठीक कराना है। इस समस्या के हल हेतु वह सोचना प्रारंभ करता है कि अगले दिन प्रातः मैकेनिक के पास गाड़ी ले जाकर ब्रेक चैक करवा लेना है या मैकेनिक को घर पर बुलाकर दिखाना है, या ड्राइवर को भेजना है, या बेटे के साथ गाड़ी भेजना है, या... , इस प्रकार उसके दिमाग में कई समाधान नजर आने लगे। वह यह भी सोचने लगा कि यदि वह गाड़ी को मैकेनिक के पास ले जाता है व गाड़ी में ब्रेक कमजोर होने के कारण रास्ते में किसी व्यक्ति की टक्कर कार से हो जाती है व वह टकराने वाला व्यक्ति यदि टक्कर से मर जाता है तो पुलिस गिरफ्तार कर सकती है, मुकदमा चल सकता है, भारी जुर्माना हो सकता है एवं उसे कई वर्षों की जेल हो सकती है। ऐसी स्थिति में उसके परिवार का क्या होगा व बच्चों की पढ़ाई व शादी का क्या होगा। इस तरह कई विपत्तियाँ उसको नजर आने लगी। इस प्रकार वह इतना भयभीत हो गया कि कार के कमजोर ब्रेक की समस्या से हटकर उसे उसके दिमाग के चिन्तन पर ब्रेक लगाने की समस्या हो गई।

किस समस्या पर कितना सोचना चाहिए यह तो नहीं कहा जा सकता है किन्तु यह मान्यता तो दूर करना ही होगी कि जितना अधिक सोचेंगे उतना अधिक अच्छा हल मिलेगा। यानी सोचने के मामले में भी अनेकान्तात्मक दृष्टिकोण रखने की आवश्यकता है कि बहुत ज्यादा सोच लाभ के बजाय हानिप्रद भी हो सकता है।

इस प्रकार हम आगामी विपत्ति की संभावना, स्वयं द्वारा हल की खोज, एवं अधिक सोच की लाभप्रदता संबन्धी एकान्त मान्यताओं में परिवर्तन करके समस्या के प्रति चिन्ता कम कर सकते हैं।

चिन्ता के संबन्ध में आगे आध्यात्मिक व्याख्या के अन्तर्गत हम यह भी देखेंगे कि आध्यात्मिक विकास से आसक्ति में कमी या पुण्य-पाप, भवितव्य आदि पर विश्वास इतना शक्तिशाली हो सकता है कि चिन्ता ठहर नहीं सकती है।

सारणी क्रं. 3

चिन्ता एवं अनेकान्त

एकांत	1) विपत्ति आने वाली है। 2) आगामी विपत्ति को टालने या कम करने का उपाय मुझे ही खोजना होगा। 3) जितना अधिक सोचूंगा उतना अधिक अच्छा उपाय विपत्ति को कम करने या टालने का मिलेगा।
अनेकांत	1) क–विपत्ति आने की यदि संभावना है तो विपत्ति के नहीं आने की भी संभावना है। ख–यह आवश्यक नहीं कि जिसे मैं विपत्ति समझ रहा हूँ वह विपत्ति रूप ही सिद्ध हो। हो सकता है संभावित विपत्ति अन्ततोगत्वा लाभप्रद सिद्ध हो। 2) आगामी समस्या का हल मुझ पर भी निर्भर करता है एवं मेरे नियंत्रण से परे अन्य ज्ञात एवं अज्ञात घटकों पर भी निर्भर करता है। 3) हो सकता है कि कम सोचने से मार्ग ठीक नहीं मिलेगा किन्तु यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि एक सीमा से अधिक सोचते रहने पर लाभ के बदले हानि भी हो सकती है।

चिन्ता दूर करने हेतु कुछ सुझाव

1) यहां वर्णित चिन्ता सम्बन्धी अनेकान्त का बार–बार पठन द्वारा अभ्यास किया जाये एवं चिन्ताजनक स्थिति होने पर चिन्ता के विषय को ध्यान में रखते हुए इसे पढ़ा जाये एवं उसके अनुसार चिन्ताजनक परिस्थिति का विश्लेषण किया जाये।

2) जिस विपत्ति की चिन्ता लग रही हो उसके बारे में स्वयं से यह प्रश्न

किया जाना उपयोगी हो सकता है कि संभावित विपत्ति सचमुच में आ गई तो अधिक से अधिक कितनी हानि होगी। हो सकता है इस प्रश्न का उत्तर ऐसा मिले कि चिन्ता करने के कष्ट से हानि सहन करने का कष्ट कम लगे। जैसे कई व्यक्ति पुत्र के अभाव में इतने चिन्तित रहते हैं कि वृद्धावस्था के पूर्व ही वृद्ध हो जाते हैं। हो सकता है यदि ऐसे व्यक्ति भविष्य के संभावित एवं कल्पित कष्ट को सहन करने के लिए कल्पना में तैयार हो जायें तो उन्हें वर्तमान में बहुत अधिक शान्ति भी मिल जाये व कोई अच्छा हल भी निकल आये।

3) जितनी अधिक शारीरिक सहनशीलता का विकास होगा उतना अधिक व्यक्ति निश्चिन्त हो सकेगा। अतः सहनशीलता में वृद्धि हेतु कठिनाई को भी अवसर के रूप में लिया जा सकता है।

4) भूख का समाधान भोजन एवं निद्रा का समाधान बिस्तर से हो सकता है, किन्तु भावी डर का वर्तमान में समाधान धनात्मक विश्वास के अतिरिक्त अन्य माध्यम से होना बहुत कठिन है। अतः अभ्यास द्वारा धनात्मक विचारधारा का विकास करना लाभदायक होता है। जाने–अनजाने में भविष्य के प्रति बुरी कल्पनाएं एवं आशंकाए जैसी हम करते हैं उसके बदले क्या अच्छी कल्पनाएं संभव नहीं है? यदि कल्पनाओं से डर पैदा हो सकता है तो कल्पनाओं से डर का इलाज भी हो सकता है। हम वास्तविकता से दूर जाने की बात नहीं कर रहे हैं। थोड़ा विचार करें कि क्या हम सचमुच में वास्तविकता के धरातल पर हैं या वास्तविकता से दूर निराशावादी आकाश में उड़ रहे हैं? थोड़े दिन जान बूझकर आशावादी आकाश में हम उड़ने का अभ्यास करें तो हम यह देख सकेंगे कि जहां हम पहले थे वह वास्तविकता का धरातल न होकर निराशावाद का आकाश था। किसी विद्वान ने कहा है –

"When most people say they are being 'realistic' they delude themselves: they are simply being negative."

5) अध्याय 4 में वर्णित आध्यात्मिक व्याख्या एवं अध्याय 3 में चर्चित वैज्ञानिक विश्लेषण का उपयोग भी हमारी अनेकान्त मान्यता बनाने में एवं चिन्ता कम करने में सहायक सिद्ध हो सकता हैं ।

2.4 (क) लोक व्यवहार

परिवार में झगड़े, तलाक, साम्प्रदायिक झगड़े, कार्यालयों एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों में तनावयुक्त वातावरण, आतंकवाद आदि कई समस्याएं समीचीन लोक व्यवहार के अनेकान्त को न समझने के कारण होती हैं। विषय अत्यन्त व्यापक होने के कारण समाज के स्तर पर क्या होना चाहिये इसकी चर्चा हम यहां न करते हुए एक व्यक्ति की समस्या के रूप में यहां हम चर्चा करना उचित समझ रहे हैं । यानी पूरे समाज को कैसे व्यवस्थित किया जाये इस प्रश्न की प्रमुखता से यहां चर्चा न करते हुए हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि अव्यवस्थित समाज में या विभिन्न प्रकार की मान्यताओं वाले व्यक्तियों के इस समाज में रहते हुए किस प्रकार का चिन्तन हमारे लिए एवं सभी के लिये लाभप्रद एवं प्रसन्नतादायक है ।

बहुधा हम निम्नांकित प्रकार के मन्तव्य विभिन्न रूपों में सुनते हैं –

1) दुनिया में अपनी रक्षा अपने को ही करना है, सभी स्वार्थी हैं व सभी व्यक्ति स्वार्थ साधने में दूसरों के हित की परवाह नहीं करते हैं ।
2) मैं सबका भला करता हूँ किन्तु सभी मेरे को बुरा समझते हैं या सभी मेरे साथ बुरा बर्ताव करते हैं ।
3) पति को उस औरत ने अपनी मुठ्ठी में कर रखा है अतः वह औरत सुखी है।
4) मेरे बच्चे मेरी आज्ञा नहीं मानते हैं अतः मेरा जीवन बेकार है ।
5) आज का जमाना बहुत खराब हो गया है । वृद्धों की कोई सेवा नहीं करता है।
6) आज के जमाने में रिश्वत के बिना कुछ भी काम नहीं होता है ।
7) मैंने उसका इतना उपकार किया है अतः अब बदले में उसे भी मेरा उपकार करना चाहिये।
8) मैं अपने परिवार की प्रसन्नता के लिये इतना कुछ करता हूँ किन्तु कभी कोई और कभी कोई नाराज बना रहता है।
9) मैं साथ में भोजन करने हेतु मेरे भाई / मित्र के लिये रूकता हूँ किन्तु वह मेरे लिये नहीं रूकता है ।
10) मैं घर में बड़ा हूँ अतः मेरे घर के सभी कार्य मेरी अनुमति से ही होने चाहिये ।

और भी कई मान्यताएं इस प्रकार की लिखी जा सकती हैं । ये सभी मान्यताएं कई तरह से अज्ञान से आच्छादित हैं । ये मान्यताएं आक्रोश का कारण बनती हैं। परिवार के सदस्यों के प्रति आक्रोश, पड़ोसियों के प्रति आक्रोश, सरकारी कंपनियों, व्यापारियों एवं नेताओं के प्रति आक्रोश ऐसी मान्यताओं से होता है। आक्रोशयुक्त होने पर थोड़े से मतभेद पर ही एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति अपना आक्रोश तीखे या भद्दे शब्दों से, हलके व्यंग से या चुप्पी से व्यक्त कर देता है। कई व्यक्तियों की तो यह भी मान्यता है कि जोर से बोलने वाले आक्रोश युक्त व्यक्ति से सभी डरते हैं व ऐसे व्यक्तियों की समस्याएं एकदम हल हो जाती हैं। यह मान्यता ठीक है या नहीं इसकी चर्चा हम यहां करना आवश्यक नहीं समझते हैं। हम तो यहां उस व्यक्ति के बारे में चर्चा कर रहे हैं जो स्वयं किसी दुःख, दर्द को जाने-अनजाने में पाले हुए है। नकली आक्रोश की भी हम बात नहीं कर रहे हैं।

यह तो मानना ही होगा कि आक्रोश अपने आप में दुःख की उपस्थिति का सूचक है । जो बहुधा आक्रोशयुक्त दिखता रहता है वह क्या सुखी एवं अनुकरणीय हो सकता है ? तनाव शिथिलता हेतु यह अत्यावश्यक है कि हमारा आक्रोश कम हो। यदि यह आक्रोश हमारे आस पास के लोगों के प्रति है तो उनसे जितनी बार मिलेंगे या उनके बारे में सोचेंगे उतनी बार ही आक्रोश पैदा होगा। ऐसी स्थिति में कितनी ही प्रकार की बीमारियां धीरे धीरे शरीर में पैदा हो सकती हैं। अपने निकटवर्ती व्यक्ति के प्रति सतत आक्रोश व बीमारी के संदर्भ में The Power of Positive Thinking के निम्नांकित शब्द महत्त्वपूर्ण हैं –

"…. Dr. Weiss stated that chronic victims of pains and aches in the muscles and joints may be suffering from nursing a smoldering grudge against someone close to them. He added that such persons usually are totally unaware that they bear a chronic resentment."

इसका भावार्थ यह है कि डॉ. वीस के अनुसार मांसपेशियों एवं जोड़ों के दर्द वाले पुराने रोगी अपने किसी निकटवर्ती व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या या रोष को पालने की आदत से ग्रसित हो सकते हैं। अक्सर यह भी होता है कि ऐसे व्यक्ति यह नहीं जानते हैं कि उन्होंने अपने किसी निकटवर्ती के प्रति ऐसा कोई रोष भी पाल रखा है

अतः प्रथम आवश्यकता यह समझने की है कि हमारा लाभ उसी में है जिससे आक्रोश कम हो। ऐसी समस्त व्याख्याएं एवं मान्यताएॅ जिनसे आक्रोश बढ़ने के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं आता है, हानिकारक हैं। ऐसा मार्ग भी विचारणीय हो सकता है जिसमें वर्तमान में नहीं तो निकट भविष्य में आक्रोश में कमी होने की संभावना हो।

आक्रोश को कम करने का श्रेष्ठ उपाय यह है कि हम दूसरे व्यक्ति का दृष्टिकोण भी समझने का प्रयास करें। हो सकता है दूसरे व्यक्ति का दृष्टिकोण हमारी दृष्टि में उचित न हो किन्तु यदि हम उसकी परिस्थिति में अपने को रखकर विचार करें तो हो सकता है हमारा आक्रोश उसके प्रति सहानुभूति में बदल जाये ।

जैसे एक अन्धा व्यक्ति हमसे पीछे से टकरा जाता है तो जब तक उसके अन्धेपन को नहीं जाने तब तक क्रोधित होते हुए हम यह भी कह देते हैं कि क्या अन्धा है ? देखकर क्यों नहीं चलता है ?'' किन्तु जैसे ही हमें यह ज्ञात होता है कि टकराने वाला व्यक्ति सचमुच में ही अन्धा है तब हम एकदम सहानुभूति के साथ यह कह सकते हैं कि 'क्षमा करना भाई, मुझे यह ज्ञात नहीं था। क्या आपको चोट तो नहीं आई ?' उसी प्रकार बहरे, गूंगे, या अन्य प्रकार के शारीरिक विकलांग पर पहले आक्रोश आ सकता है किन्तु जैसे ही उसकी विकलांगता समझ में आती है उसके प्रति क्रोध के बदले सहानुभूति पैदा हो जाती है। यही हाल समझ का है । परिस्थिति के अनुसार जैसे शरीर में विकलांगता हो सकती है वैसे ही शारीरिक रूप से एवं मानसिक रूप से अच्छे लगने वाले व्यक्ति की समझ में भी कई प्रकार की गंभीर कमियां हो सकती हैं।

समझ की कमी कभी-कभी क्षणिक भी हो सकती है। न्यूटन जैसा विद्वान वैज्ञानिक भी कभी यह समझने में भूल कर जाता है कि जिस छेद से

बड़ी बिल्ली निकल सकती है उसी छेद से एक छोटी बिल्ली भी निकल सकती है। तो फिर साधारण व्यक्ति सब्जी में नमक दुबारा डाले दे या धन्यवाद कहना भूल जाये या बधाई देना भूल जाये या बाजार से सामान लाना भूल जाये तो क्या आश्चर्य है। दूसरे व्यक्ति की ऐसी भूल को जब हम लापरवाही या जानबूझकर की गई गलती मानने लगते हैं तो यह हमारी परेशानी का कारण बन जाती है।

एक मां अपने सम्पन्न बेटे-पोतों के साथ आनन्द से रह रही है। किन्तु बचपन से उसकी समझ में यह पक्का हो गया था कि उसकी देखभाल अच्छी तभी होगी जबकि वह हमेशा बेटे-बहुओं को उनकी कमियां आक्रोश के साथ बताती रहे। इस मान्यता का परिणाम यह होता है कि उसके मुँह से अप्रिय एवं कटु वाक्य कई बार उच्चरित होते रहते हैं। यदि उसके बेटे-पोते उसकी समझ की इस कमजोरी को स्वीकार कर लें तो अप्रिय वाक्य कहती हुई मां या दादी के प्रति आक्रोश आने के बदले क्या सहानुभूति पैदा नहीं होगी ?

यहां एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि- ''ठीक है दादीजी की समझ गलत है अतः वे ऐसा करती हैं, किन्तु जब हम इतना समझाते हैं तब तो समझ लेना चाहिये? वे इतनी कुशाग्र बुद्धि वाली हैं फिर भी इतनी छोटी सी गलत मान्यता की गलती क्यों समझ में नहीं आती है ?'' इसका उत्तर यही है कि जैसे कुछ प्रकार की पांव - हाथ - आँखों की विकलांगता दूर होना संभव है तो कुछ विकलांगता ऐसी भी होती हैं जिन्हें अस्पतालों में बड़े-बड़े डाक्टर अभी तक दूर नहीं कर सके हैं। मानसिक मान्यताओं की भी ऐसी ही स्थिति होती है। कुछ मान्यताएं सहज में बदल जाती हैं तो कुछ मान्यताएं ऐसी भी हो सकती हैं जिनको बदलने में समर्थ कारण अब तक नहीं मिल पाये हो।

पुनः यहां एक प्रतिप्रश्न उपस्थित हो सकता है। आप यह कह सकते हैं कि ''यदि हमेशा हम दूसरे के दृष्टिकोण को इसी तरह उसकी समझ की भूल मानते रहे तो फिर हमारे साथ सदैव अन्याय होता रहेगा व हमें अन्याय के विरूद्ध मुकाबला करने का भी अवसर नहीं मिलेगा। यानी सदैव अन्याय स्वीकार करना होगा।''

इसके उत्तर में सर्वप्रथम यह कहना उचित होगा कि दूसरे के दृष्टिकोण को जानने व समझने का अर्थ अन्याय सहन करना नहीं है। दूसरे के दृष्टिकोण को समझने के बाद हो सकता है अन्याय का मुकाबला अधिक अच्छी तरह हो सके। उपर्युक्त उदाहरण में दादीजी के दृष्टिकोण को समझ लेने से यदि परिवार के छोटे सदस्यों को आक्रोश नहीं आता है तो इसमें सभी को लाभ ही है। साथ ही दादीजी के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिये अब जो प्रयास होंगे वे अधिक प्यार युक्त हो सकेंगे ।

इस प्रश्न के उत्तर का दूसरा बिन्दु यह है कि दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का अर्थ यह नहीं है कि दूसरे की नासमझी या गलत मान्यता को आप समर्थन दें। एक व्यापारी लालच वश कम तौलने एवं मिलावट करने की मान्यता रखता है। यह मान्यता जानने का अर्थ यह नहीं है कि आप उसके यहां से मिलावटयुक्त एवं तोल में कम सामान खरीद कर लाएं।

आलस्य एवं रिश्वत में विश्वास रखने वाले कई कर्मचारी एवं अधिकारी, मिलावटयुक्त एवं कम तौलने में आस्था रखने वाले कई व्यापारी, जनता को धोखा देने की भावना रखने वाले कई नेता आदि इस संसार में भरे हुए हैं । इन सभी के दृष्टिकोण हमारी मान्यता के अनुसार दोषपूर्ण हैं। हमारी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार शिक्षा, सजा, प्रेम आदि द्वारा इन व्यक्तियों की मान्यता बदलने का प्रयास किया जाना भी उचित है। पर साथ ही हम यह भी समझने का प्रयास करें कि इन व्यक्तियों की बहुत कुछ नासमझी इन्हें विरासत में एवं वातावरण द्वारा भेंट में मिली है तथा जिसे हम नासमझी या अवगुण मान रहे हैं उसे कई व्यक्ति विशेष होशियारी एवं योग्यता भी मानते हैं । ऐसे व्यापारी या अधिकारी या नेता की इन तथाकथित योग्यताओं के कई व्यक्ति प्रशंसक हैं व कई व्यक्ति उनके चेले बनकर उनके गुण प्राप्त भी करना चाहते हैं । हमारी ऐसी समझ हमारे जीवन में साम्यता लाएगी एवं इससे हमें समाज को सुधारने की सही दिशा भी प्राप्त होगी । यानी ऐसी समझ के साथ हम अन्याय का प्रतिकार अधिक प्रभावी ढंग से कर सकेंगे।

सारणी क्र. 4

आक्रोश एवं अनेकान्त

एकान्त	हम कहीं खड़े हुए हैं । एक व्यक्ति यदि हमारे से पीछे से टकरा जाये तो उस पर गुस्सा करते हुए हम यह कह सकते हैं कि ''अन्धा है क्या ? देखकर क्यों नहीं चलता ?''
अनेकान्त	यह भी संभव है कि टकराने वाला व्यक्ति सचमुच में ही अन्धा हो। ज्योंही हमें उसके अन्धेपन की जानकारी मिलती है उसके प्रति गुस्सा सहानुभूति में बदल सकता है । इसी तरह हमारे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में टकरानेवाले कई व्यक्तियों की किसी प्रकार की मानसिक अन्धता की पहचान करने से हमारा आक्रोश कम हो सकता है। अभिप्राय यह है कि न केवल हम हमारे दृष्टिकोण पर ही केन्द्रित रहें अपितु सामनेवाले व्यक्ति का दृष्टिकोण क्या है व क्यों है यह समझना भी आवश्यक व उपयोगी है ।

2.4 (ख) प्रसन्न करने की भावना में छिपा एकान्त

प्रसन्नता या सहमति के संबंध में हमारी एकान्त धारणा भी हमारे आक्रोश एवं अशान्ति का कारण बनती है। हम हमारे निकट के व्यक्तियों के लिए निस्वार्थ भाव से कुछ त्याग या श्रम उनकी प्रसन्नता के लिये करते हैं । करना ही चाहिये। यहां तक तो ठीक है। परन्तु इसके बदले में हमें जब उनकी अप्रसन्नता मिलती है तब हमें दुःखद आश्चर्य भी हो सकता है । कई बार ऐसी

स्थिति में हम अप्रसन्न या क्रोधित हो जाते हैं। यह क्रोध अनुचित है। हमारी यह मान्यता कि ''मैं उनकी प्रसन्नता हेतु ही इतना सब कुछ कर रहा हूँ अतः उन्हें प्रसन्न होना ही चाहिये'', एकान्त दुराग्रह है। इतना ही नहीं हम एक कदम आगे बढ़कर एक अन्य एकान्त मान्यता भी कभी-कभी अपना लेते हैं। हम यह सोचने लगते हैं कि चूंकि यह व्यक्ति मुझसे अब अप्रसन्न या असहमत है अतः इसकी दृष्टि में मैं गिर गया हूँ या मैं अब इसका प्रिय पात्र नहीं हूँ।

अनेकान्त से विचारा जाये तो हम कह सकते हैं कि यह व्यक्ति अभी इस मामले में मुझसे अप्रसन्न या असहमत है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सदैव अन्य सभी मामलों में भी वह अप्रसन्न एवं असहमत रहेगा। मनोवैज्ञानिक यह समझाते हैं कि हमारे प्रियजन को हमसे कभी अप्रसन्न या असहमत न होने देने का आग्रह उस व्यक्ति को भावनात्मक रूप से गुलाम बनाने के तुल्य है।

उक्त वर्णन से यह निष्कर्ष निकलता है कि हमारे प्रसन्न करने के श्रेष्ठतम उपायों के बावजूद भी यदि हमारा कोई प्रियजन किसी मामले में अप्रसन्न या असहमत हो तो इसे हमारे प्रियजन की स्वतंत्रता मानकर मात्र इसी आधार पर अपने मस्तिष्क में तनाव या अप्रसन्नता या आक्रोश आमंत्रित नहीं करते हुए अन्य मार्ग खोजना चाहिये। सदैव सभी मामलों में हमारे प्रियजन की सहमति की चाह एक बहुत बड़ी चाह है जिसकी पूर्ति होना बहुत कठिन है। ''मैं सहमत नहीं हूँ किन्तु आप उचित समझते हैं तो मुझे कोई आपत्ति या कठिनाई नहीं है'' - इस प्रकार के कथन भी मित्रों या प्रियजनों से सुनने को मिल सकते हैं। इस प्रकार के कथनों से भी संतुष्ट होने का साहस किन्हीं मामलों में हमें होना चाहिये । सारांश यह है कि सदैव सभी मामलों में प्रियजन की सहमति की चाह में प्यार कम है व प्रियजन को दास मानने की भावना अधिक है जिससे बचना चाहिये ।

सारणी क्र. 5

प्रियजन की अप्रसन्नता द्वारा उत्पन्न तनाव एवं अनेकान्त

एकान्त	हमें अपने प्रियजनों को प्रसन्न करने का प्रयास करना चाहिये । यदि हम प्रसन्न करने की भावना रखेंगे व उसके अनुसार कार्य भी करेंगे तो प्रियजन प्रसन्न होंगे ही ।
अनेकान्त	1) यह ठीक है कि हमें हमारे प्रियजनों को प्रसन्न करने की भावना एवं उसके अनुसार कार्य करना चाहिये। किन्तु यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि हमारे श्रेष्ठतम उपायों के बावजूद भी हमारे प्रियजन कभी अप्रसन्न हो सकते हैं। अतः उनकी अप्रसन्नता से नाराज या क्रोधित होना अनुचित है । 2) हमारे प्रियजन हमारे सारे अच्छे प्रयासों के बावजूद भी कभी अप्रसन्न रहते हैं तो इसका अर्थ यह है कि यह प्रिय व्यक्ति अभी इस मामले में मुझसे अप्रसन्न या असहमत है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि यह सदैव सभी मामलों में भी अप्रसन्न होगा। यानी प्रियजनपना एवं अप्रसन्नता ये दो विरोधी प्रतीत होने वाली बातें भी एक साथ हो सकती हैं।

2.4 (ग) प्रेम, उपकार एवं अनेकान्त

परस्पर व्यवहार से संबन्धित एकांत धारणाओं से उत्पन्न अशांति की चर्चा के क्रम में एक और महत्त्वपूर्ण मान्यता हमारे किये हुए उपकारों की वापसी से संबंधित है ।

एक बैंक में हमारे द्वारा जमा किये गये रूपये हमारे चाहने पर क्या वापस मिल सकते हैं? इसका एकान्त ''हां'' में उत्तर अपूर्ण एवं अशांतिकारक होगा। बैंक का समय जब न हो तब बैंक से रूपये नहीं मिल सकते हैं । यदि बैंक की छुट्टी हो तो रूपये वापस नहीं मिल सकते हैं। यदि हस्ताक्षर मिलान न हो तो रूपये वापस नहीं मिल सकते हैं। यदि बैंक की गलती से जमा कराये गये रूपये हमारे खाते में जमा नहीं हो पाये हों तो गलती पकड़ में आने के पूर्व रूपये वापस नहीं मिल सकते हैं। यदि बैंक दिवालिया हो जाये तो रूपये वापस

नहीं मिल सकते हैं। यदि हमने हमारे पर जो ऋण था उस ऋण को चुकाने के लिये रूपये जमा कराये हैं तो वे रूपये वापस नहीं मिल सकते हैं। यदि किसी दान कोष में जमा कराये हैं तो बैंक वापस नहीं कर सकता है। तात्पर्य यह है कि बैंक में जमा किये गये रूपये हमारे चाहने पर वापस मिल सकते हैं या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर अनेकान्तात्मक होगा। संदर्भ के अनुसार कभी इसका उत्तर ''हां'' होगा व कभी ''ना'' होगा।

जब बैंक से अपने रूपयों की वापसी में ही इतनी मुश्किलें हैं तो फिर उपकार के बदले जरूरत के समय वापस पाने की अपेक्षा रखना तो बहुत बड़ी नासमझी होगी। कई दार्शनिकों का तो मत यह है कि उपकार के बदले कुछ भी वापस पाने की अपेक्षा नहीं रखना चाहिए। यह ठीक है, किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि उपकार व्यर्थ ही जाता है। सामान्य व्यक्ति के लिये उपयोगी एवं शान्तिदायक अनेकान्तवादी दृष्टिकोण यह है कि स्वयं द्वारा दूसरों के प्रति किये गये उपकार को व्यर्थ भी न समझें एवं वापसी की भी अपेक्षा न रखें ।

उपकार के बदले में कुछ भी अपेक्षा न रखने के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी विचारणीय है। सन्तान पर माता पिता का बहुत कुछ उपकार रहता है। वे ही मातापिता वृद्धावस्था में सन्तान से वापसी की कुछ अपेक्षा रखते हैं तो इसमें क्या गलती है ?

इस प्रश्न का उत्तर संकेत रूप में ही देना पर्याप्त होगा। हम यह समझ सकते हैं कि उपकार की वापसी के आधार पर अपेक्षा एवं पिता-पुत्र के रिश्ते पर आधारित परस्पर प्रेम व्यवहार में बहुत अन्तर है। पिता प्रेम से पुत्र के लिये बहुत कुछ करता है। पुत्र भी प्रेम से पिता के लिये बहुत कुछ करता है। इस प्रेम की विशाल गहराई के सामने उपकार एवं उपकार की वापसी की माप एक निरर्थक गणित है। पिता को ऐसी जानकारी हो सकती है कि पुत्र प्रेम से पिता के लिये बहुत कुछ करता है। ऐसी जानकारी होना तो ठीक है। किन्तु अपेक्षा रखना ठीक नहीं है। तन-मन-धन से कई वर्षों की साधना के बाद सन्तान के योग्य होने पर माता-पिता की वृद्धावस्था में वही योग्य सन्तान ऐसी लाइलाज बीमारी से पीड़ित हो जाये कि कुछ समय बाद ही ऐसी सन्तान की मृत्यु होने वाली हो तो भी माता-पिता ऐसी मरणासन्न सन्तान के लिये तन-मन-धन से सेवा करते हुए देखे जाते हैं। यह सब प्रेम की ही गहराई बताता है। वहां अपेक्षा उपकार की वापसी की थोड़ी भी नहीं है। इसी प्रकार परस्पर प्रेम के अन्तर्गत माता-पिता बहुत ऋण छोड़े तो भी सन्तान की दृष्टि में माता-पिता आदरणीय एवं सेवा योग्य माता-पिता ही रहते हैं। अतः प्रेम के मामले में उपकार या ऋण

का हिसाब किताब तुच्छ एवं घटिया बात है।

जिस प्रकार उपकार के बदले उपकार की संभावना मानने एवं अपेक्षा न होने का दृष्टिकोण उपयोगी है उसी प्रकार प्रेम के बदले भी प्रेम प्राप्त होने की संभावना ही मानते हुए अपेक्षा नहीं रखना चाहिये। यानी किसी के प्रति हम प्रेम भाव रखते हैं तो इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें वापसी में उसका भी प्रेम अवश्य प्राप्त हो। कभी ''हां'' व कभी ''ना'' वाली स्थिति प्रेम के मामले में भी होती है।

मनुष्य व्यवहार का यह अनेकान्तात्मक विज्ञान समझने पर जीवन के बहुत सारे तनाव कम हो सकते हैं। ''मैं तो ऐसा करता हूँ किन्तु वे वापस ऐसा नहीं करते हैं अतः मैं दुःखी हूँ ।'' इस समस्या का समाधान सच्ची अनेकान्त समझ से हो सकता है। क्योंकि, ऐसे बिरले ही भाग्यशाली होंगे जिन्हें सभी से सदैव भावना के अनुकूल ही व्यवहार प्राप्त होता है ।

यहां यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है कि यदि ऐसा है तो फिर यह क्यों कहा जाता है कि ''कर भला तो हो भला'', या ''जैसा बोवोगे वैसा काटोगे'', या ''हम भले तो जग भला'', या ''आवश्यकता होने पर जो मित्र हो वही सच्चा मित्र है ?''

इस प्रश्न का उत्तर एक किसान यह देगा कि गेहूं बोने से गेहूं, एवं मक्का बोने से मक्का प्राप्त होती है, किन्तु जितने गेहूं के दाने बोते हैं वे सभी सफल नहीं होते है। यदि समय पर पानी न मिले या असमय में ओले आदि हो जायें तो सारी फसल भी नष्ट होते हुए देखी जाती है। यानी बोया हुआ गेहूं उग भी सकता है व नहीं भी उग सकता है। किसान यह भी जानता है कि छिलके सहित चांवल को बोया जाता है तो उगता है व छिलका हटाया हुआ चांवल नहीं उगता है। किसान यह भी जानता है कि ऊसर भूमि में बोया हुआ बीज नहीं उगता है। आदि-आदि ।

मनुष्य व्यवहार के बारे में भी ऐसा ही अनेकान्त समझने की आवश्यकता है। ''कर भला तो हो भला'' कथन हमें भला करने की प्रेरणा पाने के लिये समझना है किन्तु फल प्राप्ति के मामले में हमें यह कथन याद करना चाहिये कि मेरे कार्य पर ही मेरा अधिकार है, फल पर नहीं। जिसने यह अनेकान्त नहीं समझा उसे फल प्राप्ति की इतनी आसक्ति होगी कि फल न मिलने पर ऐसा लगेगा कि सृष्टि में अन्याय ही अन्याय है। घोर निराशा, आक्रोश, आत्महत्या, हत्या आदि, घटनाओं में कई के पीछे फल को अधिकार पूर्वक पाने की मान्यता होती है।

सारणी क्र. 6

प्रेम एवं उपकार के बदले में कुछ पाने की अपेक्षा से उत्पन्न तनाव एवं अनेकान्त

एकान्त	1) यदि हमने किसी का उपकार किया है तो हमारी आवश्यकता पर उस उपकृत व्यक्ति से मदद पाने के हम अधिकारी हैं । 2) यदि हम किसी के प्रति प्रेम भाव रखते हैं तो हम उसका प्रेम पाने के अधिकारी हैं । 3) जैसा बोवोगे वैसा काटोगे (As you sow so you reap)
अनेकान्त	1) उपकार करते समय यह मान्यता रखें कि उपकार व्यर्थ नहीं जाता है किन्तु वापसी की अपेक्षा न रखें। वापसी की अपेक्षा कई तनावों का कारण होती है। 2) प्रेम के बदले प्रेम कभी मिलता है, कभी नहीं मिलता है। प्रेम व्यापार नहीं है। वापसी की अपेक्षा रखना कई तनावों का कारण है । 3) गेहूं के दाने बोने से गेहूं की फसल प्राप्त होती है किन्तु बोये हुए सभी गेहूं के दाने फसल नहीं देते हैं । पानी की कमी, ओलावृष्टि आदि से फसल नष्ट भी हो सकती है । इसके अलावा गेहूं बोते ही गेहूं की फसल प्राप्त नहीं हो जाती है । भला करने की प्रेरणा प्राप्त करने के लिये यह ध्यान में रखना चाहिये कि ''कर भला तो हो भला'', किन्तु यह भी मान्यता रहनी चाहिये कि ''मेरे कार्य पर ही मेरा अधिकार है, फल पर नहीं ।''

2.4 (घ) वियोग, हानि, अपराध बोध आदि से उत्पन्न तनाव एवं अनेकान्त :

अपने प्रिय निकट संबंधी या मित्र की असामयिक मृत्यु कितनी दुःखदायी होती है यह लिखने की आवश्यकता नहीं है। व्यापार में हानि, नौकरी से निकाल दिया जाना, चोरी, डकैती, शारीरिक बीमारी, राजदण्ड आदि कई व्यक्तियों के जीवन में दुःख के कारण बनते हैं। इन स्थितियों से बचने के कई उपायों के बावजूद भी जीवन में इस प्रकार की हिला देनी वाली अप्रिय घटनाएं होते हुए देखी जाती हैं। कई धीर-वीर व्यक्ति भी ऐसा कुछ होने पर अधीर देखे जाते हैं। भौतिक विज्ञान, मनोविज्ञान, आयुर्वेद, समाज शास्त्र, साहित्य, संगीत, अर्थशास्त्र, अध्यात्म आदि कई विधाएँ मनुष्य के इस प्रकार के दुःखों को कम करने या नष्ट करने का मार्ग खोजती हैं। आगे अध्यात्म की चर्चा के साथ हम यह देखेंगे कि अध्यात्म ऐसी समस्याओं को हल करने हेतु बहुत शक्ति प्रदान कर सकता है। अध्यात्म की चर्चा से यह भी ज्ञात होगा कि दुःख जितना गहरा होगा अध्यात्म की औषधि भी उतनी ही अधिक आवश्यक एवं प्रभावी होगी। अध्यात्म चर्चा के पहले साधारण तर्कों से ही यहां तथ्यों का अनेक दृष्टिकोणों से विश्लेषण करके दुःखों को कम करने के मार्ग को खोजने का प्रयास किया जाना उपयोगी होगा ।

इस प्रकार की शोक या अत्यधिक हानि से संबंधित समस्याओं में दुःख के निम्नांकित तीन प्रमुख कारण होते हैं :

1) यह चिन्ता कि अब मेरा क्या होगा ?
(अस्तित्व, मान मर्यादा, धन आदि की चिन्ता)

2) यह पछतावा या अपराध बोध कि मेरी अमुक गलती से या अमुक लापरवाही से या नासमझी से इतना बड़ा नुकसान हो गया है । पछतावा इतना अधिक भी हो सकता है कि हम स्वयं, स्वयं को क्षमा करने की स्थिति में नहीं होते हैं।

3) दूसरों की गलती या लापरवाही या दूसरों के दुष्टतापूर्ण व्यवहार से उत्पन्न आक्रोश ।

समस्या का इस प्रकार विश्लेषण करने पर यह पता लग सकता है कि कारण उपर्युक्त तीन कारणों में से एक या दो या तीनों हैं। अब अगला कदम

यह होगा कि प्रत्येक कारण का पृथक्-पृथक् निराकरण किया जाये।

पहले कारण यानी भविष्य की चिन्ता के निराकरण की विधि पीछे विस्तार में कही गई है। इसे संक्षेप में सारणी क्र03 में भी वर्णित किया गया है। दूसरे कारण के विश्लेषण हेतु हम एक उदाहरण लेते हैं।

मुझे एक घटना की स्मृति आ रही है। अमरीका में 1980 में मेरे एक पाकिस्तानी मित्र को शादी के बाद कई वर्षों की प्रतीक्षा के उपरान्त पुत्री की प्राप्ति हुई। इस पुत्री के गर्भ से जन्म तक का समय मेरे मित्र एवं उनकी पत्नी के लिये बहुत कठिनाई पूर्ण रहा। एक-एक दिन उन्होंने गिन-गिन कर निकाला। बालिका कुछ महीनों की ही हुई कि यकायक निधन हो गया। देर शाम तक बालिका अत्यन्त सामान्य एवं प्रसन्न थी किन्तु मध्यरात्रि तक उसका निधन हो गया । अस्पताल पहुंचते पहुंचते ही प्राणांत हो गया था। अमरीका के नियमों के अनुसार बालिका का पोस्टमार्टम दूसरे दिन प्रातः हुआ। स्थानीय डॉक्टर पूरे दिन यह पता नहीं लगा सके कि मृत्यु का क्या कारण रहा। अतः प्रदेश की राजधानी के बड़े अस्पताल में बालिका को पहुंचाया गया। तीसरे दिन वहां यह ज्ञात हुआ कि बालिका की मृत्यु रबर के गुब्बारे के गले में अटक जाने से श्वांस लेने में कठिनाई होने के कारण हुई है। जब तक पोस्टमार्टम की रिपोर्ट नहीं आई तब तक माता-पिता को बालिका के वियोग का गहरा शोक था । किन्तु पोस्टमार्टम की रिपोर्ट आते ही माता को इस बात का पछतावा होने लगा कि वह खुद ही उसकी बच्ची के मौत के कारण (गुब्बारे) क्यों खरीद कर लाई ? फूटे हुए गुब्बारों को पालने से दूर क्यों नहीं फेंके ? बालिका पर पूरी नजर क्यों नहीं रखी ? माता का इस प्रकार के शब्दों के साथ रूदन बहुत ही करूण था ।

इस घटना के बाद माता का यह पछतावा कितने महीनों तक चलता रहा इसका उल्लेख यहां आवश्यक नहीं है। यहां यह कहना ही पर्याप्त होगा कि इस प्रकार की या इससे अधिक या कम शोक एवं हानि की घटनाओं के बाद पछतावा बहुत लम्बे समय तक भी कई व्यक्तियों को रहता है। पछतावे के कारण, पछतावे की मात्रा एवं पछतावे की अवधि के संबंध में क्या कोई नियम या फार्मूला है ? इसका उत्तर मनोवैज्ञानिक की सीमा से परे है।

इस उदाहरण के संबंध में यदि हम विचार करें तो कह सकते हैं कि

माता की इसमें क्या गलती है ? बच्चों के लिये गुब्बारे लाना कोई नयी बात नहीं है। माता को नहीं मालूम था कि फूटे हुए गुब्बारे इतने जानलेवा हो सकते हैं। क्या यह संभव है कि हर माता को हर संभावित घटना की जानकारी रहे ? क्या माता को घर-गृहस्थी के दूसरे कार्य नहीं संभालने होते हैं ? क्या शिशु पर सदैव लगातार पास बैठकर निगरानी करना मध्यम श्रेणी के व्यक्ति के लिये संभव है ?

पछतावे या अपराध बोध के पीछे व्यक्ति का चिन्तन यह होता है कि मैंने ऐसा क्यों नहीं किया ? या, मैंने ऐसा क्यों किया ? मुझे इतनी छोटी सी बात पहले समझ में क्यों नहीं आई ? इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर यही है कि हम सर्वज्ञ या सभी विषयों के विशेषज्ञ या भविष्यदर्शी नहीं हैं। हमारे ज्ञान की सीमाएं हैं। इसी प्रकार हम सर्वशक्तिमान नहीं है कि हर कार्य को हर समय पर आदर्श तरीके से कर सकें। यदि कोई बच्चे की आदर्श निगरानी रखना चाहे तो क्या संभव है ? कुछ मिनट के लिये शौच भी जाना हो सकता है, घण्टी बजे तो दरवाजा खोलने भी जाना हो सकता है, आदि आदि ।

तात्पर्य यह है कि वास्तविकता से हटकर अपने आपको पूर्ण ज्ञानी, एवं पूर्ण त्रुटिरहित व्यक्ति मानने से पछतावा होता है, व वास्तविक घरातल पर अपने आपको सीमित ज्ञानी व सीमित शक्ति वाला स्वीकार कर लें तो पछतावा कम हो सकता है।

इसका दूसरा छोर अपने आपको सर्वथा अज्ञानी एवं सर्वथा शक्तिरहित मानकर गैर जिम्मेदार समझना है। गैर जिम्मेदार बनना भी उचित नहीं है व अनावश्यक पछतावे से शक्ति नष्ट करना भी उचित नहीं है। बच्चे में किसी भी प्रकार का अवगुण दिखाई देने पर माता-पिता यदि अपने आपको दोषी समझते हैं तो यह अपने आपको सर्वशक्तिमान मानने का अज्ञान है जो हमें अपराध बोध की ओर ले जाता है। दूसरी तरफ बच्चों को पूर्णतया उनके भाग्य पर छोड़कर उनके भविष्य या शरीर के प्रति लापरवाह हो जाना भी माता-पिता के लिये उचित नहीं हो सकता है । अतः न तो पूर्णतया गैरजिम्मेदार बनना चाहिये और न ही हमें अपने आपको सर्वशक्तिमान मानने का अज्ञान रखना चाहिये।

किसी विद्वान ने कहा है, **"Learn to accept your limits and you**

will become a happier person." (हिन्दी भावार्थ : अपनी सीमाएं पहचानना सीखो। ऐसा करने से तुम अधिक सुखी व्यक्ति बन जाओगे।) आध्यात्मिक गहराई में जाते हुए आचार्य कुन्दकुन्द तो समयसार (गाथा 250) में यहां तक कहते हैं कि जो यह मानता है कि मैं दूसरे को जिन्दगी दे सकता हूं या दूसरों से मैं जिन्दा रहता हूं वह व्यक्ति अज्ञानी है। गलतियों से शिक्षा लेना विकास के लिये आवश्यक है। घर–गृहस्थी, व्यापार, कारखाने आदि की जिम्मेदारी भी एक सीमा तक समझना उचित है। जिम्मेदार मानने वाला व्यक्ति ही हानि होने पर खेद प्रकट करता है व भविष्य में अधिक सतर्कता रखने का विचार बनाता है ।

अन्य व्यक्ति भी हानि होने पर किसी जिम्मेदार व्यक्ति की तलाश करके उसको दोषी सिद्ध करना चाहते हैं। यह प्रक्रिया आज के युग में इतनी अधिक व्यापक हो गई है कि हम पारिवारिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय आदि सभी दुर्घटनाओं के लिये किसी को दोषी सिद्ध करने का भार अपने ऊपर लेते रहते हैं। दोषी ढूंढने की यही आदत जब अपने को दोषी ठहराती है तब पछतावा एवं उससे उत्पन्न अशान्ति का कारण बनती है। अतः विकास हेतु अन्य में दोष देखने की आदत में कमी भी करना चाहिए।

मानव भूलों से भरा है (To err is human)। इस कथन के पीछे क्षमा भाव की प्रेरणा है। दोष ढूंढने एवं क्षमा न करने की आदत से ग्रसित व्यक्ति जब किसी बड़ी हानि में स्वयं को दोषी पाता है तो अपराध बोध से दुःखित हो जाता है। अतः स्वयं के सुधार एवं विकास के भाव से या अन्य किसी भी कारण से हमें जब अपने दोष दिखाई दें तो भविष्य के लिए शिक्षा के साथ–साथ स्वयं को क्षमा करने की आदत भी डालना होगी। अन्यथा अपराध बोध से ग्रसित होने पर हम न तो अपना सुधार कर सकेंगे और न ही विकास। दोषी को सजा देना एकांत मार्ग है। दोषी को शिक्षा एवं क्षमा प्रदान करना अनेकान्त मार्ग है। आवश्यकतानुसार उचित दण्ड शिक्षा का एक भाग हो सकता है। स्वयं को क्षमा प्रदान करने के लिये समाज के सभी सदस्यों से अपने को निरपराधी या क्षमा योग्य प्रमाणित करवाने की आवश्यकता नहीं है।

सारणी क्र. 7

अपराध बोध (Guilt) एवं अनेकान्त

एकान्त	1) यदि मेरे कर्त्तव्य का पालन करने में कहीं भी मुझसे चूक होती है तो मैं दोषी हूँ। यदि स्थिति का अनुमान लगाने की मेरी असमर्थता या चूक से हानि होती है तो भी मैं दोषी हूँ। यदि अचानक कुछ ऐसा घटित हो जाये जिसकी कल्पना पहले मैंने नहीं की थी अतः उसकी सुरक्षा के उपाय मैंने नहीं किये थे तो भी मैं दोषी हूँ । 2) दोषी व्यक्ति को दण्ड मिलना चाहिये व व्यक्ति की सज्जनता इसी में है कि वह अन्तर्मन से सदैव स्वयं को दोषी मानता रहे। अतः दोष या गलती हो जाने पर मुझे भी अपने आपको दोषी मानते हुए सदैव पश्चाताप करते रहना चाहिये ।
अनेकान्त	1) मुझे अपनी जिम्मेदारी भी समझना चाहिये व कर्त्तव्य का पालन पूरी निष्ठा से करना चाहिये, किन्तु साथ ही मुझे अपनी सीमाएं भी ध्यान में रहना चाहिये। स्थिति को समझने में भूल हो सकती है क्योंकि मेरे ज्ञान की सीमा है। स्थिति का मुकाबला करने में चूक हो सकती है क्योंकि मेरी शक्ति की सीमा है। 2) दोषी व्यक्ति को शिक्षा व क्षमा दोनों मिलना चाहिये। स्वयं को क्षमा प्रदान करने के लिये समाज के सभी सदस्यों से अपने को निरपराधी एवं क्षमा योग्य प्रमाणित करवाने की आवश्यकता नहीं है ।

कभी कभी ऐसी दुर्घटनाएं भी हो जाती हैं जब अपराध बोध के साथ अपयश, आर्थिक हानि व अन्य कई कठिनाइयां एक साथ उपस्थित हो जाती हैं। इन सबसे मानसिक तनाव बहुत ज्यादा हो जाता है। एक व्यक्ति अपने मकान के गैराज से कार निकाल रहा है। इसी समय पड़ोसी का एक छोटा बालक

उसके मकान में आने का प्रयास करता है। परिस्थिति ऐसी बनती है कि पड़ोसी का बालक कार की चपेट में आ जाता है। पड़ोसी से कुछ ही दिनों पूर्व कहासुनी हुई थी। अब ऐसी स्थिति में इस व्यक्ति को न केवल बालक की मृत्यु के कारण उत्पन्न अपराध बोध है अपितु पुलिस व अदालत का भी सामना करना है। जानबूझकर एक्सीडेण्ट किया है ऐसे अपयश का भी सामना करना है। पड़ोसी की बदला लेने की धमकी का भी सामना करना है। इस तरह की या इससे अधिक गंभीर घटनाओं से दिमाग में बहुत अशांति होना स्वाभाविक है।

इस अशान्ति से उबरने का नुस्खा केवल तर्क एवं मनोविज्ञान से मिलना बहुत कठिन है। आगे अध्यात्म की चर्चा में हम यह देखेंगे कि अध्यात्म का नुस्खा इस तरह की कई समस्याओं से उत्पन्न मानसिक तनावों को सरलता से कम कर सकता है।

बड़ी हानि या शोक के कारण उत्पन्न मानसिक तनाव का एक संभावित घटक यह भी हो सकता है कि जो हानि हुई है वह किसी अन्य व्यक्ति की लापरवाही या गलती या दुष्टतापूर्ण व्यवहार से हुई है। सामान्य समझ इस मामले में यह रहती है कि, ''हानि की पूर्ति भी अधिक से अधिक हो जाये, दुष्ट को दण्ड भी दिला देवें, सारा समाज यह जान लेवे कि मैंने दुष्ट को बहुत दण्ड दिला दिया है, व दण्ड भुगतने के बाद वह व्यक्ति क्षमा मांगे तो फिर मैं उदार व्यक्ति की तरह क्षमा कर दूं।''

ऐसे व्यक्ति यह भी सोचते हैं कि इतना सब हो जाये तो मानसिक तनाव कम हो जाये। किन्तु जब तक इतना सब न हो तब तक दिमाग को चैन नहीं मिल सकता। इस तरह की विचारधारा वाले अधिकांश व्यक्ति ये सारी शर्तें पूरी होने के पहले ही मानसिक रूप से बहुत अशांत व दुःखी हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों की वस्तुतः पहली आवश्यकता स्वयं की अशांति दूर करने की है।

जिन्हें ऐसी स्थिति में मानसिक शान्ति की पहली आवश्यकता है उनके लिये संभावित मार्ग अध्यात्म या परोपकार के प्रति समर्पण या किसी बड़े उद्देश्य की पूर्ति में व्यस्तता है ।

2.6 निराशा एवं अनेकान्त

निराशा के कई कारण हो सकते हैं। प्रमुख कारण इस प्रकार हैं –

1) परिस्थितियां या परिस्थितियों की व्याख्या ऐसी हो कि भविष्य में अन्धकार ही अन्धकार नजर आये ।

2) एक के बाद एक ऐसी घटनाऐं होती रहें जिनसे ऐसा लगे कि मैं असफल होता जा रहा हूँ एवं अब असफल ही होता रहूंगा ।

3) किसी एक या एक से अधिक हानियों से अपराध बोध बहुत अधिक हो जाये। साधारणतया एक व्यक्ति कुछ मामलों में निराश हो सकता है तो कुछ मामलों में बहुत प्रसन्न एवं आशावादी। सभी मामलों में निराशा बहुत अधिक परेशानी का कारण होती है। आत्महत्या जैसा कायरतापूर्ण बुरा कार्य भी निराशा की अधिकता में होता है।

4) ऐसा लगे कि समाज में चारों ओर अन्याय ही अन्याय है। न्याय कहीं नहीं है।

5) जीवन के महत्त्वपूर्ण समझे जाने वाले सपने चकनाचूर हो जायें।

निराशा के जितने भी कारण गिनाए हैं, व और भी ऐसे कई कारण गिनाएं जा सकते हैं, इन सबके पीछे एक मुख्य मान्यता रहती हैः धन–दौलत एवं यश को ही जीवन की सफलता का मापदण्ड मान लेना। यह एक ऐसी एकान्त एवं भ्रामक मान्यता है जिसमें कई प्रकार की निराशाओं एवं तनावों का जन्म होता है। इसके विपरीत इस मामले में आध्यात्मिक दृष्टिकोण न हो सके तो कम से कम ऐसी अनेकान्तवादी समझ तो होनी ही चाहिये कि हम यह जानें कि धन–दौलत एवं यश किसी अपेक्षा महत्त्वपूर्ण एवं लाभदायक हैं भी व किसी अपेक्षा नहीं भी। यदि सामान्य अनुभवों के आधार पर सामान्य तर्कों से यह अनेकान्तवाद हमारी समझ में आ जाये तो निराशा से उत्पन्न तनाव बहुत कुछ समाप्त हो सकता है। साथ ही यह भी संभव है कि तनाव कम होने से धन–दौलत एवं सम्मान (यश) में वृद्धि हो जाये ।

धन–दौलत व यश से संबंधित निराशा एवं अनेकान्त

धन–दौलत एवं सम्मान ये सब कितने महत्त्वपूर्ण हैं इसे समझाने की आवश्यकता नहीं है। न केवल स्वयं के भौतिक स्वार्थ हेतु इनका महत्त्व है अपितु मानव सेवा, परोपकार एवं आध्यात्मिक प्रगति में भी ये सभी उपयोगी सिद्ध होते हुए दिखाई देते हैं। इस सिक्के का दूसरा पहलू भी हम थोड़ा–थोड़ा जानते हैं किन्तु हम कभी–कभी जानकर भी अनजान बनने में लाभ देखते हैं। हमारे आसपास दूसरे अन्य व्यक्तियों की हां में हां मिलाते हुए हम धन–दौलत एवं सम्मान के महत्त्व का दूसरा पक्ष बोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं ।

हमारे मस्तिष्क में तत्काल यह विचार आता है कि मैं अपने धन–दौलत एवं सम्मान आदि को थोड़ा भी छोड़ नहीं सकता हूँ तो फिर यह कैसे कह सकता हूँ कि ये किसी रूप में महत्त्वपूर्ण नहीं भी हैं ?

धन–दौलत की हमारे पास अधिकता होने के कारण हमारे ही प्रिय जन जब आलसी, कुमार्गगामी, एवं व्यसनी हो जाते हैं, व हमारे से ही छलबल द्वारा धन छीनते रहने का प्रयास करते हैं तब हमें कैसा लगता है ? ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है । इतिहास या समाचारपत्र ऐसे उदाहरणों से भरे हुए हैं जहां धन–दौलत की अधिकता परेशानी का कारण सिद्ध हुई है ।

सम्मान की अधिकता भी स्वयं अपने आपमें तनाव का कारण बन सकती है। हजारों फूलमालाओं द्वारा लाखों व्यक्तियों का जिन्हें सम्मान प्राप्त है उनकी सबसे बड़ी चिन्ता यही है कि यह सम्मान सदैव कैसे बना रहे। जैसे संचित धन की रक्षा की समस्या होती है वैसे ही सम्मान एवं यश की रक्षा करना भी एक बहुत बड़ी समस्या होती है।

यहां कोई यह प्रश्न कर सकता है कि धन–दौलत के अभाव में कितने ही व्यक्ति भिखारी एवं दुःखी हैं। कितने ही व्यक्ति धन की कमी के कारण चिकित्सा के अभाव में मरते हुए दिखाई देते हैं। अतः धन–दौलत का महत्त्व उपर्युक्त उदाहरणों से कम नहीं होता है। यदि थोड़े से व्यक्ति धन–दौलत से दुःखी हैं तो वे अपवाद हैं। और इस अपवाद का कारण भी उनकी अन्य गलतियां हैं । यदि ऐसी गलतियां न हों तो धन–दौलत एवं सम्मान से तो खुशी ही खुशी है ।

इसका समाधान यह है कि धन–दौलत एवं सम्मान महत्त्वपूर्ण भी हैं यह तो हम पहले ही स्वीकार कर चुके हैं। किसी अपेक्षा से ये महत्त्वपूर्ण नहीं भी हैं, यह हम तर्क द्वारा समझाना चाहते हैं। ये सब अपने आप में साध्य न होकर साधन हैं। साधन तब तक ही महत्त्वपूर्ण होता है जब तक उससे साध्य की प्राप्ति हो। यदि धन का उपयोग स्वयं की एवं दूसरों की प्रसन्नता एवं हित के लिये हो तो धन प्रसन्नता का साधन कहलायेगा। अन्यथा धन का उपयोग यदि कोई व्यक्ति दूसरों पर केवल रोब जमाने के लिये या दूसरों को कष्ट देने के लिये करे तो ऐसे व्यक्ति को अन्ततोगत्वा निराशा ही हाथ लगेगी। इसी प्रकार प्राप्त यश या प्रभाव का उपयोग परोपकार, सामाजिक विकास एवं स्वयं में

अच्छे कार्य करने के प्रति उत्साह वृद्धि करने में हो तो यश उपयोगी साधन कहलायेगा । अन्यथा कोई व्यक्ति प्राप्त यश के आधार पर दूसरों को छोटा सिद्ध करके उनको बाधा पहुँचाना चाहे व स्वयं को अहंकारी बनाले तो अन्ततोगत्वा वही यश निराशा का कारण बन सकता है। ऐसे व्यक्तियों का यश खोखला एवं गुब्बारे की तरह हो जाता है। यश का गुब्बारा फूटते ही हवा में उड़ता हुआ अहंकारी जमीन पर गिरते ही निराश हो जाता है। जिन्होंने प्राप्त यश को आगे बढ़ने एवं परोपकार करने का एक साधन माना है उनको यश मिलने पर न तो अहंकार होगा और न ही आसक्ति।

जैसे, फाउण्टेन पेन को जिसने लिखने का साधन माना है वह कीमती फाउण्टेन पेन के गुम होने पर साधारण फाउण्टेन पेन से लिखना प्रारंभ कर सकता है। किन्तु जिसने कीमती फाउन्टेन पेन को अपनी शान माना है वह कीमती फाउण्टेन पेन के गुम होने पर अपनी शान में कमी महसूस करेगा एवं साधारण फाउण्टेन पेन अपने पास रखने में हीनता अनुभव करेगा।

यहां जिज्ञासु की ओर से एक प्रश्न होता है कि बचपन से ही हम यह सुनते आये हैं कि धन–दौलत तो नश्वर हैं किन्तु हमारे यश या नाम या इज्जत को हमारी मृत्यु के बाद भी याद रखा जायेगा । हमें नाम कमाना चाहिये, हमारे परिवार का नाम रोशन करना है । हमें हमारे देश का नाम रोशन करना है– सभी कथन यही तो बताते हैं कि यश साधन न होकर साध्य हैं यानी यश अपने आप में मार्ग न होकर मंजिल है ?

इसका समाधान यह है कि ''अपने द्वारा किये गये अच्छे कार्य'' एवं ''अच्छे कार्यों द्वारा प्राप्त यश'' दोनों में बहुत अन्तर है। सभी लौकिक शिक्षाओं में मूलतः अच्छे कार्य करते रहने की प्रेरणा दी जाती है न कि यश को साध्य मानने की। कुछ अच्छे कार्यों द्वारा कोई व्यक्ति जब नाम या यश कमा लेता है तब पुनः उससे यही अपेक्षा रहती है कि वह यश से प्राप्त उत्साह, उमंग एवं लोकप्रियता का उपयोग अधिक अच्छा एवं अधिक बड़ा कार्य करने में करे ।

इतना सब पढ़ लेने के बाद एक पाठक यह पूछ सकता है कि यह सारा वर्णन तो उन व्यक्तियों के लिये उपयोगी लगता है जिनके पास धन–दौलत, यश आदि पर्याप्त मात्रा में एकत्रित हों। ज्यादा दुःखी व निराश तो वे व्यक्ति हैं जिनके पास धन–दौलत, यश आदि कुछ भी नहीं है। जिनके पास ये सब नहीं

है, वह तो इन्हें अर्जित करने का प्रयत्न करेगा ही। इन्हें साध्य मानें या साधन मानें, ऐसे व्यक्ति के लिये क्या अन्तर पड़ता है ?

इस प्रश्न के उत्तर में दो बिन्दु है। पहला बिन्दु धन-दौलत, यश आदि को कमाने के प्रयास करने के बारे में है। यहां धन-दौलत, यश का अर्जन करने की मनाई नहीं की जा रही है। गृहस्थ को शक्ति एवं आवश्यकता के अनुसार कमाना चाहिए। दूसरा बिन्दु यह है कि धन-दौलत, यश को साधन मानने वाला व्यक्ति निराश नहीं होगा।

एक साधन के अभाव में दूसरा साधन ढूंढना कई बार उचित एवं उपयोगी होता है। जहाँ हमें सर्वत्र अंधकार लगता है या जहाँ सभी दरवाज़े बंद प्रतीत होते हैं, वहाँ अवश्य ही ध्यान से टटोलने पर ऐसे कुछ स्विच मिल सकते हैं जिन्हें दबाते ही कुछ प्रकाश हो सकता है व उस प्रकाश से कुछ अन्य स्विच भी दिखाई दे सकते हैं। धन-दौलत, यश को साधन मानने वाला व्यक्ति यह जानता है कि धन-दौलत, यश के अभाव में शरीर, श्रम, बुद्धि आदि साधनों के द्वारा भी कई प्रकार की कठिन परिस्थितियों का मुकाबला किया जा सकता है।

इसके विपरीत धन-दौलत यश को साध्य मानने वाला इनको कस कर के पकड़ना चाहेगा या निराश रहेगा। जैसे झूंठी शान यानी यश की तीव्र आसक्ति से कई बार हम हमारी स्थिति को सुधारने हेतु उचित कदम नहीं ले पाते हैं। एक खाते-पीते परिवार का बेरोजगार युवक इसलिये निराश हो सकता है कि उसे बड़ी पदवी वाला अधिकारी बनने का अवसर तत्काल नहीं मिल रहा है, व कम अधिकार की नौकरी करने में अपमान समझता है। एक बड़ा व्यापारी इसलिये निराश है कि उसका बैंक बैलेंस खाली हो गया है एवं लाखों रूपयों के जेवर व हवेली को अपयश के डर से हाथ नहीं लगाना चाहता है।

यह भी गहराई से समझना है कि बात इतनी सरल नहीं होती है जितनी यहाँ ऊपर के पैरा में लिखी है। उपर्युक्त बेरोजगार युवक की निराशा में उसका वह दर्द भी एक कारण है जहाँ उससे कम योग्य युवक को चुन लिया गया है व उसको ठुकरा दिया गया है। वह सपना भी एक कारण हो सकता है जिसके अन्तर्गत उसने अपने आपको सभी सुविधाओं से सम्पन्न, कार, बंगले, नौकर-चाकर प्राप्त होने वाली कुर्सी द्वारा अपने परिवार एवं मित्रों पर रोब डालने की कल्पना की होगी। आदि-आदि।

अतः ऐसे युवक की निराशा हल करने हेतु यह तो आवश्यक है ही कि वह धन-दौलत, यश आदि के द्वारा दूसरों पर रोब डालने की मान्यता को बदले।

साथ ही उसे जीवन का यह भी अनेकान्त समझ में आना चाहिये कि न तो सर्वत्र अन्याय है और न ही सर्वत्र न्याय। यह स्वीकार करना सीखना होगा कि बाढ़, सूखा, भूकम्प, आंधी, तूफान भी इस प्रकृति में हैं तो फूलों की क्यारियां, लहलहाते हुए खेत, कलकल करती हुई सुन्दर नदियां आदि भी इस प्रकृति में हैं। दोनों में से किसी के भी अस्तित्व को नकारना मिथ्या एकांत होगा, जो कि अन्ततोगत्वा तनाव का कारण हो सकता है। इन्हीं तथ्यों की आध्यात्मिक समझ तथाकथित ''अन्याय'' में भी प्रकृति का न्याय देखती है। एक आध्यात्मिक गृहस्थ ऐसे ''न्याय'' को स्वीकारते हुए भी तथाकथित 'अन्याय' का मुकाबला करता है। अध्यात्म का यह अनेकान्त विस्तार से अध्याय 4 में वर्णित किया गया है।

इसी प्रकार ऊपर वर्णित व्यापारी की निराशा के पीछे न केवल बैंक बैलेन्स खाली होने का दुःख है परन्तु उसके पीछे एक कारण यह भी हो सकता है, कि उसे शीघ्र ही अपनी पुत्री का विवाह करना है। एक कारण यह भी हो सकता है कि उसके कर्मचारियों (मुनीम आदि) ने या पार्टनर ने धोखा दिया हो या सरकारी अधिकारियों ने अनावश्यक रूप से ज़्यादती की हो या अन्य किसी व्यापारी ने दिवाला निकाल दिया हो या खुद की गलती का ही अपराध बोध हो। यानी स्वयं या अन्य पर क्रोध की उपस्थिति में भी उसका तनाव बहुत ज्यादा हो सकता है।

ऐसे व्यापारी की भी निराशा की समस्या हल करने हेतु उसे इस पुस्तक में वर्णित कई एकान्त मान्यताओं को सुधारना होगा। न्याय-अन्याय का अनेकान्त, धन-दौलत व यश के महत्त्व से सम्बन्धित अनेकान्त, अपराध-बोध से सम्बन्धित अनेकान्त, आक्रोश से सम्बन्धित अनेकान्त, चिन्ता से सम्बन्धित अनेकान्त आदि का उपयोग समस्या के विभिन्न अंगों पर समुचित रूप से किया जाना चाहिये। साथ ही यह मान्यता ध्यान में रहे कि जितना प्रयास हम धन-दौलत एवं यश को अर्जित करने का व सुरक्षित रखने का करते हैं, उसका एक अंश मात्र प्रयास भी यदि हम स्वयं के अन्दर आशा, उमंग एवं उत्साह बनाये रखने का करें तो कई समस्याएं अति शीघ्र हल हो सकती हैं। यह सोचना एक भूल है कि यदि धन-दौलत व यश है तो आशा, उमंग व उत्साह भी आ ही जायेंगे ।

सारणी क्र. 8

न्याय-अन्याय से संबन्धित अनेकान्त

एकान्त	आज की इस दुनिया में सर्वत्र अन्याय ही अन्याय है।
अनेकान्त	(1) न तो अन्याय सर्वत्र है और न ही न्याय सर्वत्र है। (2) बाढ, सूखा, भूकम्प, आंधी, तूफान भी इस प्रकृति में हैं तो फूलों की क्यारियां, फसलों से लहलहाते हुए खेत एवं कलकल करती हुई सुन्दर नदियां भी इस प्रकृति में हैं। (3) पहले भी न्याय एवं अन्याय दोनों थे। हो सकता है पहले जैसे कुछ न्यायवादी अब नहीं दिखाई देते हैं। यह भी हो सकता है कि पहले होने वाले कुछ अन्याय अब नहीं होते हों। (4) अन्याय से असहमत होना एवं न्याय प्राप्ति का प्रयास करना बुरा नहीं है। किन्तु अन्याय से निराश हो जाना ठीक नहीं है।

अध्याय 3

भौतिक विज्ञान के अनेकान्त के परिप्रेक्ष्य में हमारे जीवन की समस्याएं

भौतिक विज्ञान अत्यन्त गहन सूक्ष्म विज्ञान है। विज्ञान की प्रगति के साथ तर्क की गहराई भी बढ़ रही है। यह आवश्यक नहीं है कि जीवन की समस्याओं को समझने हेतु हम भौतिक विज्ञान द्वारा प्रदत्त गहरे तर्कों का प्रयोग करें ; किन्तु जब आज हमारे पास भौतिक विज्ञान सरलता से उपलब्ध है, व उसका ज्ञान यदि जीवन की किसी समस्या को सुलझाने में मदद कर सकता है, तो विचाार कर लेने में लाभ ही है। दूसरी बात यह भी है कि जैसे एक बालक को 2 एवं 3 का जोड़ 5 होता है, यह सिखाने की कई विधियां हो सकती हैं वैसे ही पिछले पृष्ठों में वर्णित मान्यताओं को कई तरह से समझने एवं समझाने का प्रयास किया जा सकता है। हम सब यह जानते हैं कि आम से या टॉफियों की सहायता से 2 और 3 के जोड़ का गणित समझना उपयोगी हो सकता है। इस अध्याय में भौतिक विज्ञान का उपयोग भी इसी तरह किया जा रहा है।

3.1 आकर्षण व प्रतिकर्षण का अनेकान्त

यहाँ हम यह तथ्य वर्णित करेंगे कि दो कणों के बीच आकर्षण भी संभव है व प्रतिकर्षण भी सम्भव है।

प्रोटॉन में धनात्मक आवेश होता है। एक प्रोटॉन दूसरे प्रोटॉन को समान आवेश होने के कारण प्रतिकर्षित ही करता है। ऐसा सामान्य सोच है। किन्तु अधिक गहराई में जाने पर यह ज्ञात होता है कि दो प्रोटॉन एक दूसरे को आकर्षित भी करते हैं । जैसे हीलियम के केन्द्र में दो प्रोटॉन बहुत ही नज़दीक रहते हैं। नज़दीक रहने का कारण यह है कि दो प्रोटॉनों के बीच में आकर्षण भी होता है व प्रतिकर्षण भी।

इसी प्रकार दो अणुओं का एक जोड़ा भी एक दूसरे के कारण किसी दूरी पर प्रतिकर्षण का अनुभव करता है, तो किसी अन्य दूरी पर आकर्षण अनुभव करता है।

मजेदार बात यह भी है कि विज्ञान यह मानता है, कि एक ही स्थिति में आकर्षण बल भी लगता है तथा प्रतिकर्षण बल भी कार्य करता है। कभी प्रतिकर्षण ज़्यादा होता है, तो हमें ऐसा लगता है कि वे प्रतिकर्षित कर रहे हैं अथवा कभी आकर्षण ज़्यादा होता है, तो हमें ऐसा लगता है कि वे आकर्षित कर रहे हैं।

मनोवैज्ञानिक भी यह स्वीकार करते हैं कि एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के प्रति जब प्रेम प्रतीत होता है, तब उस समय में भी थोड़ी घृणा उसमें छिपी रहती है। यानी घृणा एवं प्रेम का एक साथ अस्तित्व मनोवैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अपने स्वजनों एवं मित्रों से यह कहें कि हम तुम्हें प्यार भी करते हैं, तथा नफरत भी करते हैं। व्यावहारिक शब्दावली एवं विशेषज्ञों की शब्दावली में सदैव अन्तर रहता है। चूंकि इस लेख का विषय बोलने की कला नहीं है, अतः इसका अधिक विश्लेषण न करते हुए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हज़ारों वर्षों का अनुभव यह कहता है कि सत्य बोलो, प्रिय बोलो, किन्तु अप्रिय सत्य न बोलो।

अतः आपसी व्यवहार में यह जानना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि एक ही व्यक्ति किसी परिस्थिति में प्यार भी कर सकता है, व अन्य परिस्थिति में घृणा भी कर सकता है। यदि हमें अपने प्रियजन की किसी मामले में नाराजगी या घृणा दिखाई दे, तो हमें एक तो यह नहीं मानना चाहिये कि अब यह व्यक्ति हमसे स्थायी रूप से नाराज़ है या घृणा करने लग गया है। दूसरी बात यह है कि हमें समझने का प्रयास करना चाहिये कि कौन से कारण हमारे प्रियजन में घृणा का भाव पैदा करते हैं। हमारा यह अनेकान्तवादी सोच एवं विश्लेषण हमारे आपसी व्यवहार को अधिक अच्छा बना सकेगा।

3.2 ऊर्जा उत्पादन सम्बन्धी अनेकान्त

एक बांध पर पानी जब उच्च स्तर से नीचे गिरता है, तो गुरुत्वाकर्षण के कारण पानी में गति आ जाती है। यह गतिज़ ऊर्जा (Kinetic energy) यन्त्रों द्वारा विद्युत ऊर्जा (electrical energy) में बदली जाती है।

एक परमाणु बिजली घर में यूरेनियम के परमाणुओं के टूटने में प्रोटॉन एवं न्यूट्रॉन ऊर्जा के उच्च स्तर से निम्न स्तर में आते हैं। इस प्रक्रिया में द्रव्यमान में निहित ऊर्जा का एक अंश ऊष्मा ऊर्जा में बदलता है। यंत्रों के द्वारा ऊष्मा ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदला जाता है।

इन प्रक्रियाओं में निम्नांकित प्रकार के अनेकान्त कथन बनते हैं:

1. ऊर्जा का उत्पादन हुआ है।
2. ऊर्जा का उत्पादन नहीं हुआ है। ऊर्जा संरक्षण के सिद्धान्त के अनुसार ऊर्जा न तो पैदा की जा सकती है और न ही ऊर्जा नष्ट की जा सकती है।[(1)] ऊर्जा संरक्षण का सिद्धान्त भौतिक विज्ञान का एक अत्यन्त मौलिक सिद्धान्त है। इसकी अवहेलना या अपवाद की स्थिति अब तक नहीं देखी गई है। यानी ऊर्जा उत्पादन का प्रश्न ही नहीं है।

एक तरह से उक्त दोनों कथन विरोधी प्रतीत होते हैं। एक तरफ ऊर्जा उत्पादन स्पष्ट नजर आता है। समाचार पत्रों में एवं राष्ट्र के आंकड़ों में स्पष्ट उल्लेख होता है कि कितनी ऊर्जा का उत्पादन हुआ है। दूसरी तरफ ऊर्जा का न तो उत्पादन होता है, और न ही ऊर्जा नष्ट होती है, यह भी विज्ञान का एक अकाट्य सिद्धान्त है।

इस अनेकान्त का आध्यात्मिक महत्त्व यह है कि जैसे ऊर्जा का उत्पादन या विनाश संभव नहीं है, उसी प्रकार हम यह समझें कि जीव का भी न तो जन्म होता है और न जीव की मृत्यु होती है। दूसरे विरोधी प्रतीत होने वाले कथन के अन्तर्गत जब हम यह कहते हैं कि ऊर्जा का उत्पादन होता है, तो वहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि विद्युत ऊर्जा का उत्पादन हुआ है तथा गुरुत्वीय ऊर्जा या द्रव्यमान का विनाश हुआ है। वस्तुतः हमारे कहने का भाव यह है कि ऊर्जा का रूपान्तरण हुआ है। इसी प्रकार हम जीव के जन्म या जीव की मृत्यु की बात अध्यात्म में करते हैं, तो वहाँ अभिप्राय यही है कि जीव के शरीर का रूपान्तरण हुआ है।

---

(1) यहां द्रव्यमान को भी ऊर्जा का रूप मानकर यह लिखा जा रहा है कि ऊर्जा न तो नष्ट होती है और न ही ऊर्जा का उत्पादन होता है। आइन्सटीन ने यह बताया कि द्रव्यमान (m) के तुल्य ऊर्जा $E=mc^2$ होती है। इस सूत्र में c = प्रकाश का निर्वात में वेग है।

इस अनेकान्त का जीवन के तनावों को कम करने हेतु यह उपयोग कर सकते हैं कि एक तरफ हम अपने आपको अजर-अमर जीव मानते हुए निडर बन सकते हैं व हमारे अपनों का वियोग सहन करने की शक्ति भी इससे प्राप्त कर सकते हैं। दूसरी तरफ यह भी ध्यान में रख सकते हैं कि जिसे हम बना नहीं सकते हैं उसे मिटाने का कोई अधिकार नहीं रखते हैं। अतः स्वयं के या दूसरे जीव के शरीर को नष्ट करने की अनधिकृत चेष्टा क्यों करें? यानी स्वयं की एवं पर की हिंसा की चेष्टा से बचते हुए विश्वशांति में सहयोगी बन सकते हैं।

ऊर्जा के उत्पादन से सम्बन्धित इस वर्णन में एक यह अनेकान्त भी उल्लेखनीय है कि पानी से बिजली बनने में कौन महत्त्वपूर्ण है, यानी किसे श्रेय मिलना चाहिए। कई श्रेय ले सकते हैं-

1. पानी
2. पृथ्वी जिसके गुरुत्वाकर्षण के कारण पानी नीचे आया।
3. सूर्य जिसने पानी को अपनी गर्मी द्वारा वाष्प में बदल कर ऊपर उठाकर बादलों में बदला और वे ही बादल वर्षा के रूप में बदल कर नदी के उच्च धरातल पर पानी के रूप में आये।
4. वैज्ञानिक, मजदूर, इंजीनियर जिनके काम एवं बुद्धि से पूरी योजना चल रही है।
6. स्थानीय राजनेता जिनके प्रयासों से बांध बना है।
7. सरकार जिसने बांध योजना स्वीकृत की है व क्रियान्वित करवाई है।
8. स्वयं ऊर्जा जो कि कभी सूर्य की धूप में थी, फिर पानी में पहुँची.... फिर बिजली रूप में....!

श्रेय लेने वालों की सूची और भी लम्बी हो सकती है। हमारा मन्तव्य समझाने हेतु इतनी ही पर्याप्त है। वस्तुतः किसे श्रेय मिलना चाहिये? इस प्रश्न का उत्तर भौतिक विज्ञान के अनुसार यह होगा कि पानी से जल विद्युत बनने की क्रिया में स्थानीय राजनेताओं के प्रयास से या सरकार से भौतिक विज्ञान का कोई लेना देना नहीं। पानी, पृथ्वी आदि का भी कोई अंश बिजली में नहीं आया है। इस सूची में केवल 8वां घटक ही बिजली बना है। स्वयं ऊर्जा जो कभी सूर्य की धूप में थी, वही ऊर्जा पानी की स्थितिज ऊर्जा एवं फिर पानी की गतिज़ ऊर्जा एवं फिर विद्युत ऊर्जा में बदली है। अतः इस ऊर्जा को ही भौतिक

विज्ञान बिजली बनने का श्रेय देता है। भौतिक विज्ञान का यह उत्तर अध्यात्म ग्रन्थ में दिए गये इस उत्तर के तुल्य है, जहाँ यह कहा गया है....

यः परिणमति स कर्त्ता..... (समयसार, कलश क्र. 51)

अर्थात्, जिसमें परिणमन यानी परिवर्तन (transformation) होता है, वही कर्त्ता है।

भौतिक विज्ञान से आगे पूछा जाये कि स्वयं ऊर्जा के अलावा भी क्या अन्य किसी को श्रेय दिया जा सकता है? भौतिक विज्ञान का उत्तर यही होगा कि स्वयं ऊर्जा के अतिरिक्त अन्य को श्रेय देना यदि शुरू करेंगे तो ऐसे कई घटक श्रेय के पात्र होंगे। भौतिक विज्ञान खुलासा करते हुए यह भी कह सकता है कि श्रेय शब्द भौतिक विज्ञान के शब्द कोश का शब्द नहीं है। यह तो जनता की बोलचाल का शब्द है जिससे जनता का व्यवहार चलता है। सारांश यह है कि बिजली बनाने में वस्तुतः श्रेय तो ऊर्जा को ही मिलना चाहिये, किन्तु घटना का विस्तार समझने की अपेक्षा मशीनरी, इंजीनियर, मजदूर, राजनेता, जनता आदि की चर्चा भी विद्युत् उत्पादन प्रक्रिया के साथ होती है। इस प्रकार की चर्चा में वस्तुओं एवं व्यक्तियों के उल्लेख को भी यदि हम श्रेय दें तो इस अपेक्षा ये सभी श्रेय के पात्र माने जा सकते हैं।

इस विश्लेषण का जीवन के व्यवहार के सन्दर्भ में हम विचार करें तो यह देख सकते हैं कि जब भी हम किसी अच्छी घटना के लिये स्वयं सम्पूर्ण श्रेय लेकर अहंकार कर रहे हों, वहाँ थोड़ा ब्रेक लगाकर विचार करें कि क्या सचमुच में ही अन्य व्यक्तियों एवं साधनों को इसका श्रेय नहीं मिलना चाहिये? जैसे इन पंक्तियों के लिखने का श्रेय मेरे को ही नहीं है, अपितु मेरे गुरुजन, माता-पिता, परिवार एवं सैकड़ों अन्य पुस्तकों के लेखकों, प्रकाशकों को भी है जिनके माध्यम से मुझे बहुत कुछ मिला है। इसी प्रकार जिन्होंने लिखने की प्रेरणा दी है उनका भी अमूल्य योगदान एवं श्रेय इस रूप में है कि उनके बिना यह करने का प्रयास प्रारम्भ ही नहीं होता।

अहंकार न करने की यह प्रवृत्ति हमें अनावश्यक अपराध बोध से भी मुक्त करेगी। किसी अप्रिय कार्य होने के लिए भी कई जिम्मेदार हो सकते हैं। सारी जिम्मेदारी स्वयं की मान लेने पर अपराध बोध का भारी तनाव हो जाता है। अतः अपराध बोध के तनाव की कमी हेतु भी हमें यह अनेकान्त मदद कर सकता है। जो शिक्षक किसी अच्छे विद्यार्थी पर अहंकार करता है उसकी परिणति यह भी हो सकती है कि किसी असफल विद्यार्थी के लिये उसको अपराध बोध

हो। इसके विपरीत जो शिक्षक अच्छे विद्यार्थी की उपलब्धि में भी अपने को कई घटकों में से एक घटक मानकर अहंकार न करता हो, वह शिक्षक असफल विद्यार्थी की असफलता के लिये भी अपराध बोध के तनाव से मुक्त हो सकता है। आदर्श अवस्था यह है कि एक शिक्षक अपना कर्त्तव्य तो करे, किन्तु अहंकार या अपराध बोध पैदा न करे।

3.3 प्रकृति की व्यवस्था का अनेकान्त

एक कांच के गिलास को पत्थर के फर्श पर गिराने से कई टुकड़े हो जाते हैं। कुछ बड़े टुकड़े होते हैं, तो कुछ अत्यन्त छोटे, कुछ टुकड़े बहुत दूर तक उछल जाते हैं, तो कुछ टुकड़े थोड़ी ही दूर तक।

इस प्रयोग के सम्बन्ध में विरोधी कथनों वाला अनेकान्त विचारणीय है–

1. कांच के गिलास के टुकड़े बहुत ही अव्यवस्थित हुए हैं व अव्यवस्थित ढंग से उछले हैं।

2. कांच के गिलास के टुकड़े पूर्ण व्यवस्थित ढंग से भौतिक विज्ञान के नियमों का पालन करते हुये हुए हैं। विभिन्न दिशाओं एवं विभिन्न दूरियों तक भी विभिन्न टुकड़ों के जाने में पूर्ण व्यवस्था एवं अनुशासन के साथ भौतिक विज्ञान के नियमों का पालन हुआ है।

सामान्य व्यक्ति सम्भवतया उक्त बिन्दु क्र.–2 से सहमत न हो किन्तु भौतिक विज्ञान को समझने वाला इससे बहुत ही सरलता से सहमत होगा।

ये दोनों कथन परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं किन्तु यदि हम इन पर अपेक्षा लगालें कि किस अपेक्षा प्रत्येक कथन उचित है तो यह सम्यक् अनेकान्त होगा।

पहला कथन इस अपेक्षा से उचित हो सकता है कि हमारी दृष्टि से कांच के विभिन्न टुकड़ों के आकार–प्रकार, दूरी एवं दिशा में कोई व्यवस्था नज़र नहीं आती है। हमारी दृष्टि में कमरे की सफाई की आवश्यकता हो गई है या कांच का गिलास टूटने का नुक्सान हो गया है, अतः इस अपेक्षा से भी हम इसे अव्यवस्थित कह सकते हैं।

दूसरा कथन इस अपेक्षा से उचित है कि भौतिक विज्ञान के मौलिक नियमों (जैसे ऊर्जा संरक्षण सिद्धान्त, संवेग संरक्षण सिद्धान्त, न्यूटन के नियम आदि) का पूर्णतः पालन हुआ है। आइन्सटीन ने वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर बहुत स्थानों पर यह बताया कि सृष्टि व्यवस्थित है। इस संदर्भ में आइन्सटीन का निम्नांकित कथन भी ध्यान देने योग्य है–

‘‘समस्त घटनाओं में व्यवस्थित नियमितता के बारे में व्यक्ति जितना अधिक समझेगा उतनी अधिक उसकी यह मान्यता दृढ़ होती जायेगी कि व्यवस्थित नियमितता के कारणों में अन्य प्रकार के (शासक/अलौकिक शक्ति) कारणों को कोई स्थान नहीं है। ऐसे व्यक्ति के लिये न तो किसी शासक की या न ही किसी अलौकिक शक्ति की मंशा किसी घटना का मूलभूत कारण बन सकती है।’’

जब हमारे दृष्टिकोण एवं किसी अन्य व्यक्ति के दृष्टिकोण में विरोध हो तब हम दूसरे व्यक्ति को ही गलत ठहराते हैं। यहाँ इस उदाहरण में हमारे दृष्टिकोण में एवं भौतिक विज्ञान के दृष्टिकोण में विरोध है। क्या हम भौतिक विज्ञान के इस व्यवस्था वाले दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करेंगे ? भौतिक विज्ञान का विकास जब बहुत कम था, तब भी आज से 1000 वर्ष पूर्व आचार्य अमृतचन्द्र ने समयसार कलश क्र. 212 में यही कहा था–

स्वभाव नियतं यतः सकलमेववस्त्विष्यते।
स्वभाव चलनाकुलः किमिहमोहितः क्लिश्यते।।

अर्थात्, जब समस्त वस्तुएं अपने स्वभाव में नियत रहती हैं (यानी निश्चित नियमों का पालन करती हैं) तो फिर (हे आत्मा) तू स्वभाव से हट कर आकुलित होकर क्यों मोहित होता है एवं क्लेश पाता है ?

अहा ! अत्यन्त अद्‌भुत साम्यता की दिशा इस भौतिक विज्ञान की व्यवस्था एवं उपर्युक्त आध्यात्मिक संदेश से प्राप्त हो सकती है।

सारांश यह है कि सब कुछ अव्यवस्थित है, ऐसा हमारा सतत चिन्तन चलता रहता है। इस तरह के चिन्तन की भी आवश्यकता एवं उपयोगिता कई अवसरों पर है, किन्तु थोड़े समय के लिये इस चिन्तन को विश्राम देकर, ‘‘मेरे जीवन में सब ठीक ठाक है’’, ऐसा विचार करने का अभ्यास कई तनावों, चिन्ताओं एवं व्याधियों से राहत प्रदान कर सकता है।

एक अमरीकी मनोवैज्ञानिक लुई है (Louise Hay) अपनी पुस्तक (You Can Heal Your Life) में स्थान स्थान पर लिखती हैं, ‘‘मेरी दुनिया में सब ठीक ठाक है (All is well in my world) ’’, इस तरह का चिन्तन भी उपयोगी है।

3.4 पानी की स्वच्छता से सम्बन्धित अनेकान्त

दो हाइड्रोजन के परमाणु एवं एक आक्सीजन के परमाणु से मिलकर पानी का एक अणु बनता है। (पानी के अणु को H_2O द्वारा व्यक्त करते हैं)

यह हमारा साधारण अनुभव है कि मिट्टी मिला हुआ पानी पीने के योग्य नहीं है। किन्तु विज्ञान की दृष्टि से पानी के अणु मिट्टी से उसी तरह भिन्न रहते हैं, जिस तरह गेहूं में कंकर मिलाने पर गेहूं के दाने एवं कंकर भिन्न रहते हैं। हम यह भी सोच सकते हैं कि जैसे कंकर की संगति में रहकर गेहूं के दानों पर थोड़ी मिट्टी लग सकती है उसी तरह पानी के अणु जब मिट्टी की संगति में रहते हैं तो पानी के अणुओं पर मिट्टी लग जाती होगी। यह सोचना भी त्रुटिपूर्ण है। पानी का प्रत्येक अणु स्वच्छ ही है।

इस स्थिति को निम्नांकित परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले अनेकान्तवादी कथनों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है....

1. जिस पानी में कीचड़ घुला हुआ हो वह पानी गंदा है। पीने के लिये अयोग्य है।

2. जिस पानी में कीचड़ घुला हुआ है उस पानी का भी प्रत्येक अणु कीचड़ से भिन्न है। पानी के किसी भी अणु के अन्दर कीचड़ ने प्रवेश नहीं किया है। कीचड़ मिलाने से पहले, कीचड़ सहित एवं कीचड़ साफ करने के बाद, तीनों अवस्थाओं में, पानी का अणु वैसा का वैसा ही है।

ये दोनों कथन जिस अपेक्षा से कहे गये हैं, उस अपेक्षा से ठीक हैं। दूसरे कथन को और स्पष्ट समझने के लिये यह रेखांकित किया जा सकता है कि कीचड़ युक्त पानी में पानी के अणुओं को स्वच्छ कहने का कारण मात्र यह नहीं है कि उनका कीचड़ दूर हो सकता है। परन्तु जिस समय पानी और कीचड़ साथ-साथ हैं, उस समय भी पानी का अणु कीचड़ से भिन्न है, यानी उस समय भी पानी का अणु शुद्ध या स्वच्छ है।

एक तरफ कीचड़ युक्त पानी को पीने योग्य न मानना व दूसरी तरफ पानी के प्रत्येक अणु को स्वच्छ मानना आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रमाणित ऐसा अनेकान्त है जिसका आध्यात्मिक महत्त्व है। पानी के अणु की गन्दे पानी में भी स्वच्छता आत्मा की स्वच्छता का ज्ञान कराता है। जैसे गन्दे पानी में भी पानी

का प्रत्येक अणु शुद्ध है, व गन्दगी उससे भिन्न है, उसी तरह विभिन्न विकारों वाली आत्मा सांसारिक अवस्था में भी शुद्ध है। व्यावहारिक जीवन में भी यह अनेकान्त निम्नानुसार उपयोगी हो सकता है।

कीचड़ युक्त पानी के प्रत्येक अणु की स्वच्छता यह बताती है कि जिसे हम पापी कहते हैं, वह व्यक्ति आत्मा की अपेक्षा पाप से भिन्न है। 'पाप से घृणा करो, पापी से नहीं', यह अमर वाक्य पानी के अणु की स्वच्छता के आधार पर सरलता से समझ में आ जाता है।

यदि एक व्यक्ति की बुराइयों को किसी अपेक्षा उससे भिन्न मान लें तो उस व्यक्ति के प्रति घृणा बहुत कम हो सकती है। हममें से कई का अनुभव यह हो सकता है, कि कभी-कभी हमें विशेष व्यक्ति की शक्ल देखते ही तनाव आ जाता है या किसी विशेष का नाम याद आते ही आक्रोश पैदा हो जाता है। ऐसे आक्रोश या तनाव से मुक्ति पाने हेतु हमें यह मान्यता दृढ़ करना होगी कि वह व्यक्ति बुरा नहीं है, किन्तु बुराई उसकी बुराई में है। अर्थात् यदि हम उस बुरे व्यक्ति को व्यक्ति एवं बुराई के योग के रूप में स्वीकार करने का अभ्यास करें तो उस व्यक्ति के नाम या शक्ल से उत्पन्न आक्रोश एवं तनाव कम हो सकते हैं।

3.5 बंधन एवं स्वतन्त्रता का अनेकान्त

आधुनिक विज्ञान के अनुसार हाइड्रोजन का एक एटम (atom) एक प्रोटॉन एवं एक इलेक्ट्रॉन से मिलकर बना होता है। हाइड्रोजन एटम के अन्दर प्रोटॉन एवं इलेक्ट्रॉन परस्पर आकर्षण द्वारा बंधे हुए रहते हैं।

प्रोटॉन का आवेश धनात्मक होता है व इलेक्ट्रॉन का आवेश भी प्रोटॉन के बराबर ही होता है, किन्तु ऋणात्मक होता है। अतः दोनों के आवेशों की जोड़ शून्य होती है। अतः हाइड्रोजन का आवेश शून्य माना जाता है।

निम्नांकित अनेकान्त कथन पर विचार करना रोचक हो सकता है.....

1. समग्र हाइड्रोजन एटम की अपेक्षा प्रोटॉन एवं इलेक्ट्रॉन एक दूसरे से बंधे हुए हैं, व एटम का विद्युत् आवेश शून्य है।

2. हाइड्रोजन एटम के प्रोटॉन की अपेक्षा प्रोटॉन ने धनात्मक आवेश का थोड़ा सा भाग भी न तो इलेक्ट्रॉन को दिया है और न ही इलेक्ट्रॉन का ऋणात्मक आवेश लिया है। यानी प्रोटॉन के गुणों मे कोई कमी या वृद्धि

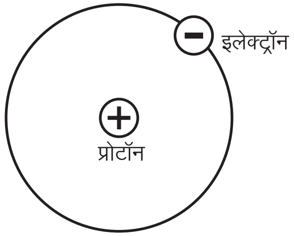

चित्र क्रं.1 : हाइड्रोजन परमाणु एक प्रोटॉन एवं एक इलेक्ट्रॉन से मिलकर बना होता है।

नहीं हुई है। इस अपेक्षा से प्रोटॉन यह कहता है कि इलेक्ट्रॉन उसके ईर्द–गिर्द चक्कर लगाता है तो लगाता रहे, उसकी स्वतंत्रता उसके पास है। इलेक्ट्रॉन की दृष्टि में प्रोटॉन उसका पड़ोसी है। काम्पटन विवर्तन (Compton Scattering) जैसे प्रयोग द्वारा इलेक्ट्रॉन की स्वतंत्रता सिद्ध होती है। इसी तरह नाभिकीय संलयन (Nuclear Fusion) जैसी क्रियाओं में प्रोटॉन इस प्रकार व्यवहार करता है जैसे इलेक्ट्रॉन से वह स्वतंत्र है।

ये दोनों कथन ठीक हैं। पहला कथन इलेक्ट्रॉन एवं प्रोटॉन का बंधन बताता है। दूसरा कथन दोनों की स्वतंत्रता का ज्ञान कराता है। एक साथ स्वतंत्रता एवं बंधन को दर्शाने वाला भौतिक विज्ञान का यह उदाहरण अध्यात्म के लिये इस रूप में महत्त्वपूर्ण है कि आत्मा एवं शरीर किसी अपेक्षा बंधे हुए भी हैं व किसी अन्य अपेक्षा स्वतंत्र भी हैं। व्यावहारिक जीवन में भी इस बंधन व स्वतंत्रता के एक साथ अस्तित्व को समझकर हम हमारी मान्यता को निम्नानुसार समीचीन कर सकते हैं।

समय का बंधन या समय की सीमा, धन का बंधन या धन की सीमा व ऐसे और भी कई बंधन हमारे जीवन में होने का अर्थ यह नहीं है कि हम पूर्णतः इनके आधीन हो गये हैं। कुछ अच्छे कार्य हम करना चाहते हैं, किन्तु हम कई बार इन बंधनों से इतने भयभीत रहते हैं कि हम आगे बढ़कर कुछ करने का साहस ही नहीं कर पाते हैं। यदि हाइड्रोजन परमाणु के इस उदाहरण से प्रोटॉन की तरह हम भी अपनी थोड़ी सी स्वतंत्रता भी पहचान लें एवं अच्छे कार्य करने का प्रयास करें तो हम देखेंगे कि ये बंधन उतने बाधक नहीं हैं, जितनी कल्पना हमें थी।

3.6 निष्क्रिय गैसों की सक्रियता का अनेकान्त

हीलियम, निऑन, ऑरगन, क्रिप्टान एवं ज़िनान निष्क्रिय गैसें (inert gases) कहलाती हैं। प्रारम्भ में यह देखा गया कि ये गैसें रासायनिक क्रियाओं में भाग नहीं लेती हैं। अतः इन्हें निष्क्रिय नाम दिया गया। शनैः शनैः विज्ञान के विकास के साथ इनकी सक्रियता एवं उपयोगिता भी दिखाई देने लगी। विशेषतः भौतिक विज्ञान से सम्बन्धित अनुसंधानों में इनका महत्त्व बहुत नज़र आने लगा। लेजर (Laser) में इन गैसों का बहुत उपयोग होता है। सड़कों पर बड़े–बड़े निऑन लेम्प एवं ऑरगन लेम्प भी बहुत सक्रियता के साथ उपयोगी बनकर हमारे सामने आये हैं। जिस समय इन्हें निष्क्रिय नाम दिया गया उस समय यह अन्दाजा नहीं था कि ये गैसें भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में इतनी सक्रिय होंगी। रासायनिक क्रियाओं की दृष्टि से ये गैसें निष्क्रिय कहला सकती हैं, किन्तु समग्र दृष्टि से इन्हें निष्क्रिय कहना अनुचित होगा। अर्थात्, इन गैसों को निष्क्रिय मानना मिथ्या एकांत होगा। सम्यक् अनेकान्त यहाँ यह होगा कि रासायनिक क्रियाओं की दृष्टि से ये गैसें निष्क्रिय हैं, किन्तु भौतिक विज्ञान की दृष्टि से ये गैसें निष्क्रिय नहीं हैं।

इस उदाहरण से हमारे जीवन में क्या कुछ प्रेरणा मिल सकती है ? थोड़ा विचार करें । सामान्यतया कई तनावों का कारण यह होता है कि हम हमारे परिवार के सदस्यों, सहयोगियों आदि के बारे में यह धारणा बना लेते हैं कि अरे यह व्यक्ति तो बिल्कुल अयोग्य है, इसे कुछ नहीं आता है, यह सुस्त है, स्मार्ट नहीं है, आदि – आदि । मजे की बात यह है कि हम ऐसी धारणा कुछ ही कार्य–कलापों के आधार पर बना लेते हैं जैसे किसी को तैरना नहीं आता हो, ब्रीज नहीं खेलना आता हो, टेनिस नहीं आता हो, टाइपिंग नहीं आता हो, शेयर के भाव समझ में नहीं आते हों, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह व्यक्ति स्मार्ट नहीं है। हो सकता है उसे भाषाओं का ज्ञान अच्छा हो, कार ड्राइविंग में विशेष प्रवीण हो, विज्ञान का ज्ञान अच्छा हो, उच्च चरित्र वाला हो, मानव व्यवहार में निपुण हो, आदि–आदि ।

अतः हमें यह जानना चाहिये कि यदि हम हमारे सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों की प्रतिभा समझने का प्रयास करेंगे तो हमें उनकी बहुत विशेषताएं नज़र आ सकेंगी। अन्यथा कुछ ही बिन्दुओं के आधार पर किसी को निष्क्रिय या निरूपयोगी समझ लेंगे तो तनाव को आमंत्रण मिल सकेगा।

निष्क्रिय गैसों की सक्रियता का यह उदाहरण आध्यात्मिक क्षेत्र में भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आध्यात्मिक रूप से विकसित आत्मा के लिये आचार्य अमृतचन्द्र ने स्पष्ट लिखा है...

'ये कुर्वन्ति न कर्म न जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च।'
(समयसार कलश क्र. 111)

अर्थात्, आध्यात्मिक रूप से विकसित व्यक्ति कर्म भी नहीं करते हैं और आलस्य भी नहीं करते हैं। उनका अभिप्राय यह है कि भौतिक दृष्टि से चाहे ऐसे व्यक्ति कर्म न करते हुए दिखाई देते हों किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से सक्रिय रहते हैं। ध्यान में बैठे हुए एक व्यक्ति को भौतिक दृष्टि से देखने पर लगता है कि यह व्यक्ति कुछ भी कर्म नहीं कर रहा है किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से देखने पर यह कहा जाता है कि यह व्यक्ति इस समय आध्यात्मिक दृष्टि से सक्रिय है, इस समय कई पुराने गलत संस्कार समाप्त हो रहे है या कर्म खिर रहे हैं।

3.7 सूक्ष्म एवं स्थूलः

कोयले के जलने से हम परिचित हैं। रसायन विज्ञान इस क्रिया को निम्नांकित समीकरण के रूप में लिखता है....

कार्बन + आक्सीजन = कार्बन डाई आक्साइड + ऊर्जा

($C + O_2 = CO_2$ + ऊर्जा)

इस क्रिया का विश्लेषण सूक्ष्म दृष्टि से करने पर देखते हैं कि कार्बन के एक एटम में 6 प्रोटॉन, 6 न्यूट्रॉन एवं 6 इलेक्ट्रॉन होते हैं व आक्सीजन के एक मालिक्यूल (molecule) में 16 प्रोटॉन, 16 न्यूट्रॉन एवं 16 इलेक्ट्रॉन होते हैं। अर्थात्, जलने की इस क्रिया के पहले 22 प्रोटॉन, 22 न्यूट्रॉन एवं 22 इलेक्ट्रॉन थे, व जलने के बाद कार्बन डॉई आक्साईड का जो मॉलिक्यूल (Molecule) बना उसमें भी 22 प्रोटॉन, 22 न्यूट्रॉन एवं 22 इलेक्ट्रॉन होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जलने की क्रिया के पहले जितने प्रोटॉन, न्यूट्रॉन एवं इलेक्ट्रॉन थे उतने ही प्रोटॉन, न्यूट्रॉन एवं इलेक्ट्रॉन जलने की क्रिया के बाद भी रहे। इतना ज़रूर हुआ कि कार्बन के प्रोटॉन एवं आक्सीजन के प्रोटॉन पहले दूर-दूर थे, वे अब नज़दीक आ गये है। इसी प्रकार अन्य कण भी नज़दीक आ गये हैं। यानी सूक्ष्म कणों के पड़ोसी बदले हैं। कुल मिलाकर हम यह पाते हैं

कि यदि हमारी दृष्टि स्थूल कोयले पर है, तो हम यह कह सकते हैं कि कोयला जला है, किन्तु यदि हमारी दृष्टि सूक्ष्म है व हमारे ज्ञान चक्षुओं से प्रोटॉन, न्यूट्रॉन एवं इलेक्ट्रॉन हमें दिखते हों तो हम कहेंगे कि कुछ भी नहीं जला। दोनों कथन यद्यपि विरोधी प्रतीत होते हैं, किन्तु जिस अपेक्षा से कहे जा रहे हैं, उस अपेक्षा से उचित हैं, अतः यह भी सम्यक् अनेकान्त का एक उदाहरण है। सारांश यह है कि....

1) स्थूल दृष्टि से देखने पर कोयला जला।
2) प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, इलेक्ट्रॉन यानी सूक्ष्म कणों को देखने की दृष्टि से ज्ञात होता है कि कुछ भी नहीं जला।

स्थूल दृष्टि एवं सूक्ष्म दृष्टि का यह भेद मोमबत्ती के जलने, कागज़ के पानी में गलने, उबलते हुए दूध का वजन कम होने आदि सभी क्रियाओं पर लग सकता है।

विज्ञान के विकास के साथ हम सूक्ष्म से सूक्ष्मतर कणों की दृष्टि से चर्चा कर सकेंगे। सूक्ष्मतम कणों के बारे में चाहे विज्ञान अभी नहीं जान पाया है, व कई वर्षों बाद तक भी नहीं जान पायेगा, किन्तु उनका प्रकृति में अस्तित्व मानते हुए हम चर्चा आज भी कर सकते हैं। सूक्ष्मतम कणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि किसी भी भौतिक क्रिया में सूक्ष्मतम कणों का केवल स्थान परिवर्तन होता है और वह स्थान परिवर्तन भी भौतिक विज्ञान के नियमों के अनुसार ही होता है। विज्ञान की इसी सूक्ष्मतम दृष्टि का अध्यात्म के क्षेत्र में उपयोग करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार में यह दर्शाया कि कोई भी आत्मा न तो पदार्थ का निर्माण कर सकता है और न उनके गुण पैदा कर सकता है। तो फिर आत्मा पदार्थों का कर्त्ता कैसे कहला सकता है? (गाथा क्र. 104)

इसी तथ्य को श्रीमद् भगवद्गीता में इस प्रकार कहा है, कि सब कुछ प्रकृति की व्यवस्था है, किन्तु अहंकार से मोहित अज्ञानी अपने आपको प्रकृति के कार्यों का कर्ता मानता है। भगवद्गीता के रचयिता को ये भाव इतने अधिक महत्त्वपूर्ण लगे कि एक नहीं किन्तु दो स्थानों पर इसका जिक्र किया। (श्लोक क्र. 3.27 एवं 13.29)

उपर्युक्त अध्यात्म की गहराई विज्ञान की उस सूक्ष्म दृष्टि से है जिस दृष्टि से कोयले के जलने में भी कुछ नहीं जलता हुआ दिखाई देता है। किन्तु स्थूल विज्ञान की तरह अध्यात्म की स्थूल दृष्टि के अनुसार भी मकान जलता है

व कोई जलाता भी है तथा कोई किसी के मकान में आग लगादे तो सजा का पात्र भी होता है।

इस अनेकान्त से हमारे व्यावहारिक जीवन में प्रेरणा लेने योग्य बात यह है कि हम आध्यात्मिक ग्रन्थों को पढ़ते हुए विरोधी प्रतीत होने वाली बातों को उचित परिप्रेक्ष्य में लें। ऐसा किये बिना हमें विरोध ही विरोध प्रतीत होगा। दृष्टि कोणों को समझने की योग्यता से साम्प्रदायिक सद्भाव भी पैदा होता है।

हमारी स्थूल दृष्टि तो जाग्रत है ही। किन्तु स्थूल दृष्टि एक पक्ष है। केवल स्थूल दृष्टि को मानना एकान्त है। दूसरा पक्ष यानी सूक्ष्म दृष्टि भी जाग्रत करना है। सूक्ष्म दृष्टि जाग्रत होने पर हमारे जीवन के लाभ, हानि में हम साम्यभाव प्राप्त कर सकेंगे। जब कोई एक हानि की घटना होती है, तब सूक्ष्म विश्लेषण से उसी घटना में कई प्रकार के लाभ एवं लाभ की संभावना के बीज भी दिखाई दे सकते है। जब जीवन में कोई एक दरवाज़ा बंद होता हुआ प्रतीत हो तब सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर दूसरा दरवाज़ा भी खुलता हुआ प्रतीत हो सकता है। नार्मन पील के अनुसार–प्रत्येक हानि में उतना ही या उससे अधिक लाभ का बीज छिपा रहता है।

3.8 सूक्ष्म एवं स्थूल –।। : ठोस, द्रव, गैस

जल के विभिन्न रूपों से हम परिचित हैं। यह बर्फ के रूप में ठोस एवं वाष्प के रूप में गैसीय रूप होता है। द्रव रूप से तो भली–भाँति हम परिचित हैं ही। अब एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह हो सकता है कि जल का एक अणु क्या है ? यानी जल का एक अणु ठोस है या द्रव है या गैस है ? इसका वैज्ञानिक उत्तर यह है कि पानी का एक अणु न तो ठोस है न द्रव है और न गैस है। ठोस, द्रव एवं गैस तो पानी के कई अणुओं के समूह के नाम हैं। जैसे एक ईंट न तो मकान होती है, न दुकान होती है और न ही माल गोदाम होती है। उसी प्रकार पानी का एक अणु न तो ठोस होता है, न द्रव होता है और न ही गैस कहलाता है। यानी जल के संबन्ध में निम्नांकित अनेकान्त कथन बनते हैं....

1) जल किसी अपेक्षा ठोस है। किसी अपेक्षा द्रव है। किसी अपेक्षा गैस है।
2) जल एक अणु की अपेक्षा न तो ठोस है, न द्रव है और न ही गैस है।

ऐसा ही अनेकान्त आत्मा के बारे में भी लगता है। किसी अपेक्षा जीव मनुष्य है, किसी अपेक्षा जीव हाथी है, किसी अपेक्षा से जीव चींटी है। किन्तु मात्र जीव (आत्मा) की अपेक्षा जीव न तो मनुष्य होता है, न हाथी होता है, न चींटी होता है... मनुष्य, हाथी, चींटी आदि तो जीव एवं जीव के पड़ोसी कई भौतिक परमाणुओं (शरीर) के सम्मिलित रूप के नाम हैं।

व्यावहारिक जीवन में इस अनेकान्त का उपयोग निम्नानुसार किया जा सकता है....

1) मैं किसी कार्यालय का अफसर हूँ अतः उस अपेक्षा मुझे अफसर के कर्त्तव्य का निर्वाह करना है।

मैं किसी क्लब का सचिव हूँ, अतः उस अपेक्षा मुझे सचिव के कर्त्तव्य का निर्वाह करना है। मैं किसी संस्था का अध्यक्ष हूँ, अतः उस अपेक्षा संस्था के अध्यक्ष के कर्त्तव्य का निर्वाह करना है।

2) मैं स्वयं की अपेक्षा न तो अफसर हूँ, न क्लब का सचिव हूँ, न किसी संस्था का अध्यक्ष हूँ। इस अपेक्षा इन सब बाह्य आवरणों का अभिमान मुझे नहीं होना चाहिये।

3.9 आइन्सटीन का सापेक्षता सिद्धान्त एवं अनेकान्त

भौतिक विज्ञान में सापेक्षता का महत्त्व आइन्सटीन के पूर्व भी था, किन्तु आइन्सटीन ने सापेक्षता के बीज से दो ऐसे वृक्ष[1] लगाये जिनसे भौतिक विज्ञान में क्रांति आई एवं भौतिक विज्ञान अत्यन्त समृद्ध हुआ।

आइन्सटीन के पूर्व तक यह विवाद का विषय रहा कि सूर्य स्थिर है या पृथ्वी स्थिर है, या दोनों अस्थिर हैं। इस बारे में कई प्रयोग भी हुए।[2] आइन्सटीन ने इस विवाद का ठोस हल यह कहते हुए प्रस्तुत किया कि सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी घूमती है एवं पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य घूमता है। दोनों कथनों में से कोई भी कथन कम या अधिक वजनदार नहीं है।

---

(1) ये दो वृक्ष हैं : (1) Special Theory of Relativily (2) General Theory of Relativity ।

(2) उदाहरणः (Michelson- Morley experiment, Fresnel's partial drag experiment)

आइन्सटीन की इस सापेक्षता से क्या व्यर्थ के झगड़े कम करने की प्रेरणा ले सकते हैं ? उत्तर ः अवश्य।

आइन्सटीन के सापेक्षता सिद्धान्त के मौलिक पहलुओं पर भी विचार करें तो पायेंगे कि आइन्सटीन ने भौतिक जगत के सभी भौतिक मापदण्डों (घड़ी, तराजू, लम्बाई का पैमाना) को सापेक्ष बताया। उदाहरण के लिये हम यह कह सकते हैं कि आइन्सटीन के सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी पर खड़े एक व्यक्ति के सापेक्ष हिमालय पर्वत की समुद्र तल से यदि ऊँचाई 29000 फीट (उन्तीस हज़ार फीट) है तो यही ऊँचाई पृथ्वी के सापेक्ष वेग 2.985 लाख किलोमीटर/सैकण्ड से ऊँचे उठते हुए व्यक्ति के सापेक्ष 2900 फीट (दो हज़ार नौ सौ फीट) होगी व पृथ्वी के सापेक्ष 2.598 लाख किलोमीटर/सैकण्ड वेग से ऊँचे उठते हुए व्यक्ति के सापेक्ष यही ऊँचाई 14500 फीट (चौदह हजार पांच सौ फीट) होगी।

हमारी सामान्य विवेक बुद्धि के समक्ष ये आंकड़े अविश्वसनीय लगते हैं। द्रव्यमान, गति, समय आदि सभी भौतिक माप आइन्सटीन के सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार सापेक्ष हैं। यह सब सापेक्ष होने के बावजूद भौतिक विज्ञान के नियमों को सभी के लिये आइन्सटीन ने समान अर्थात् निरपेक्ष माना।(1) इस तरह सापेक्षता में भी समानता या निरपेक्षता का अस्तित्व आइन्सटीन के सिद्धान्त में है। इसी प्रकार अध्यात्म के अनुसार आत्माओं के विकास में भिन्नता के कारण संसार की घटनाओं को देखने का दृष्टिकोण भिन्न हो सकता है। किन्तु आध्यात्मिक नियमों की दृष्टि से सभी आत्माएं समान हैं।

व्यावहारिक जीवन में इस अनेकान्त का श्रेष्ठ उपयोग यह हो सकता है कि विभिन्न व्यक्ति मानव सेवा या परिवार सेवा या देश सेवा का समान उद्देश्य रखते हुए भी उसकी प्राप्ति विभिन्न विचारों एवं विभिन्न प्रकार के कार्यों द्वारा कर सकते हैं। यानी दो राजनैतिक दलों में देश सेवा का समान उद्देश्य होते हुए भी वैचारिक भिन्नता या कभी किसी मामले में परस्पर एक दूसरे से विपरीत विचारधारा हो सकती है। इस स्थिति को स्वीकारने से न केवल व्यक्ति का

---

(1) इस समानता की मान्यता का इतना वजन है कि विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त के कुल दो अभिगृहीतों (Postulates) में से यह समानता की मान्यता एक अभिगृहीत है।

अपितु समाज में व्याप्त तनाव भी कम हो सकता है। यह मानना नितान्त भूल होगी कि हम एवं हमारा राजनैतिक दल ही सच्चे देश भक्त हैं। कभी किसी मामले में, हमारी विचारधारा से विपरीत विचारधारा वाले अन्य दल देश द्रोही हैं, ऐसा मानना भी एक भूल हो सकती है।

अनेकान्त यह बताता है कि परस्पर विरोधी दो मान्यताएं विभिन्न अपेक्षाओं से एक साथ सम्यक् भी हो सकती हैं। अर्थात् एक पक्ष यदि ठीक प्रतीत होता है व दूसरा पक्ष उसका विरोधी प्रतीत हो तो मात्र विरोधी प्रतीत होने के आधार पर ही हम उसे मिथ्या सिद्ध नहीं कर सकते हैं। इसका अर्थ यह भी नहीं लेना है कि हर उचित मान्यता की विरोधी मान्यता भी उचित होगी। कभी दोनों परस्पर विरोधी मान्यताएॅ उचित हो सकती हैं, कभी एक उचित व एक अनुचित , व कभी दोनों अनुचित हो सकती हैं। गणित की भाषा में इस तथ्य को बहुत अच्छी तरह से यों कह सकते हैं कि समीकरण $x^2 = 16$ का हल $x = +4$ भी ठीक है व $x = -4$ भी ठीक है। किन्तु

$$(x-4)^2 = 0$$

समीकरण का हल $x = 4$ ठीक है, व $x = -4$ असत्य है।

3.10 क्वाण्टम सिद्धान्त एवं अवक्तव्यता

खण्ड 1.3 में अनेकान्त के परिचय के अन्तर्गत अनेकान्त की एक विशिष्टता यह भी बताई है कि अनेकान्त पदार्थ की अवक्तव्यता को स्वीकार करता है। अवक्तव्यता का अभिप्राय यह है कि पदार्थ का किसी अपेक्षा से कोई पक्ष अवक्तव्य या अकथनीय (inexpressible) हो सकता है। पदार्थ में जड़ और चेतन दोनों सम्मिलित होते हैं। अतः यह जिज्ञासा होती है कि जड़ में यानी भौतिक विज्ञान में अवक्तव्यता किस प्रकार मान्य है ? अज्ञानता न होने पर भी अवक्तव्यता का होना भौतिक विज्ञान में 20 वीं सदी में क्वाण्टम सिद्धान्त के अनुसन्धान के साथ प्रतिष्ठित हुआ।

भौतिक वैज्ञानिक प्रकाश के अवक्तव्य स्वरुप को स्वीकारते हुए इस बहस में समय खर्च नहीं करते हैं, कि प्रकाश कण है या तरंग है। वैज्ञानिकों की रुचि तो इसमें रहती है, कि किन परिस्थितियों में प्रकाश कण की तरह व्यवहार करता है व किन परिस्थितियों में अन्य प्रकार का व्यवहार करता है।

जीवन में एक ही व्यक्ति को हम कभी उदार दानी के रूप में देखते हैं, तो कुछ ही क्षण बाद उसी व्यक्ति की कंजूसी के दर्शन करते हैं। ऐसी स्थिति में सामान्य व्यक्ति चकरा जाता है। वह सोचने लगता है कि यह व्यक्ति कंजूस है

या दानी है। सामान्य व्यक्ति हर व्यक्ति पर लेबल लगाना चाहता है। किसी को कंजूस, किसी को दानी, किसी को व्रती, किसी को तपस्वी, किसी को ज्ञानी, किसी को मूर्ख आदि लेबल लगाता है। ऐसे लेबल लगाना कई परिस्थितियों में परेशानी का कारण बन जाता है। किसी को उसने बहुत विद्वान मान रखा है, किन्तु वह कभी देखता है कि वह व्यक्ति कई छोटी – छोटी बातें भी नहीं जानता है। तब उसे बहुत परेशानी होती है। इसी प्रकार किसी को महादानी का लेबल लगाकर किसी संस्था के लिये दान मांगने पर नहीं मिलता है तो बहुत गुस्सा आ सकता है।

आज के मनोवैज्ञानिक भी अनेकान्त की अवक्तव्यता को इस रूप में स्वीकारते हैं कि किसी भी व्यक्ति पर दानी, कंजूस, विद्वान, मूर्ख आदि का लेबल लगाना, लेबल लगाने वाले की अज्ञानता है।

भौतिक शास्त्रियों ने प्रकाश के अवक्तव्य रूप का सामना करने हेतु प्रकाश कण है या प्रकाश तरंग है, इस प्रश्न पर समय खर्च करना छोड़ दिया है। अब वैज्ञानिकों का सोच यह है कि हमें तो प्रकाश का व्यवहार जानना चाहिये। हमें तो यह ज्ञान होना चाहिये कि किस परिस्थिति में प्रकाश का व्यवहार क्या होगा। इसी प्रकार हमारे दैनिक जीवन में जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं, उन व्यक्तियों के बारे में लेबल न लगाते हुए हमें यह समझने का प्रयास करना चाहिये कि किस परिस्थिति में अमुक व्यक्ति किस रूप में व्यवहार करेगा। यदि हम यह समझ सकें तो हमारे समताभाव में यह बहुत सहायक होगा। सामान्यतया हम नाराज तभी होते हैं जब हमारे द्वारा दिये हुए अच्छे लेबल के अनुसार वह व्यक्ति अच्छा कार्य नहीं करता है। सामान्यतया हम ऐसे व्यक्ति को भी देखकर व्यथित होते हैं जिसे हमने खराब लेबल दिया है। यदि हमारे परिवार के नज़दीकी सदस्य या किसी सहयोगी को ही खराब समझ लिया है व उसे देखकर ही घृणा करते हैं तो अप्रसन्नता से बचना कठिन होगा।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है कि अच्छे को अच्छा व खराब को खराब तो मानना ही पड़ता है। यदि अयोग्य को योग्य मानकर उस पर भरोसा कर लें तो क्या बना कार्य नहीं बिगड़ेगा ?

इसका उत्तर यह है कि अनेकान्त की अवक्तव्यता अच्छा या खराब लेबल लगाने को मना करती है। व्यक्ति को समझने की मनाई नहीं है। कौन व्यक्ति क्या कार्य कर सकता है या किन परिस्थितियों में उसका व्यवहार क्या हो सकता है यह समझना उचित है। उस जानकारी के आधार पर उस व्यक्ति पर

भरोसा किया जाना भी उचित है। किन्तु समूचे व्यक्ति को एक लेबल द्वारा व्यक्त कर देने में या तो आवश्यकता से अधिक विश्वास होगा या पूर्ण अविश्वास एवं नफरत। दोनों ही स्थितियां हानिकारक हैं। अधिक विश्वास कुछ समय बाद विश्वासघात की ओर ले जा सकता है, एवं पूर्ण अविश्वास एवं घृणा से समता एवं शान्ति प्रभावित होगी। अपने सहयोगी एवं परिवार के सदस्य के मामले में तो इस अवक्तव्यता को ध्यान में रखकर अच्छा या खराब लेबल लगाने से बचकर हमारी समता एवं शान्ति की रक्षा करने हेतु विशेष जागरूक होना चाहिये।

इस वर्णन को पढ़ने के बाद एक प्रश्न यह उपस्थित हो सकता है कि व्यवहार में जो नज़दीकी व्यक्ति अच्छा नहीं लगे उसके बारे में खराब लेबल नहीं लगाना चाहिये, ऐसा कहना तो सरल है, किन्तु जीवन में उतारना कठिन है। क्या कोई व्यावहारिक विधि है जिसका उपयोग करके खराब लेबल लगाने से बचा जा सकना संभव हो ?

इस प्रश्न के कई उत्तर परिस्थिति के अनुसार हो सकते हैं। एक सामान्य विधि यह हो सकती है कि जिस नज़दीकी व्यक्ति को हम खराब समझ रहे हैं, उसके कुछ अच्छे गुणों पर विचार करने हेतु हम थोड़ा समय दें तो उसी व्यक्ति के कई अच्छे गुण भी ध्यान में आ सकते हैं। एक बार कुछ अच्छे गुण नज़र आने पर कुछ और भी अच्छाइयां धीरे-धीरे दिखाई देने लगेंगी। इसका परिणाम यह होगा कि हमें समूचा व्यक्ति खराब नहीं लगते हुए उसकी कुछ आदतें अच्छी व कुछ आदतें खराब लगेंगी। इसका अधिक अभ्यास होने पर उस व्यक्ति के प्रति समताभाव में वृद्धि हो सकती है।

आधुनिक विज्ञान एवं ज्ञान के कई क्षेत्रों से अनकोन्तवाद की ऐसी कई धारणाओं को समझा जा सकता है जिनसे हमारे जीवन में व्याप्त हठ्धर्मिता एवं हठ्धर्मिता से उत्पन्न तनाव कम हो सकते हैं। संस्कृत साहित्य के एक ऋषि ने संभवतया इसे ही ध्यान में रखकर कहा है...

विद्या ददाति विनयं,

अर्थात्, विद्या विनय प्रदान करती है।

अध्याय 4

अध्यात्म के अनेकान्त के परिप्रेक्ष्य में हमारे जीवन की समस्याएं

सर्वप्रथम हमने द्वितीय अध्याय में सामान्य विवेक बुद्धि पर आधारित अनेकान्त दृष्टिकोण द्वारा तनावों को कम करने के उपायों पर विचार किया। तत्पश्चात् तृतीय अध्याय में भौतिक विज्ञान के तर्कों पर आधारित अनेकान्त दृष्टिकोण द्वारा तनावों को कम करने के सूत्र खोजे। अब हम भौतिक विज्ञान के पूरक आत्मविज्ञान का लाभ लेने का प्रयास करते हैं।

भौतिक विज्ञान द्वारा वर्णित पदार्थ एवं पदार्थों की गति, स्थिति, काल, क्षेत्र के अतिरिक्त जब जीव या आत्मा को भी अविनाशी द्रव्य के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है व प्रत्येक प्राणधारी में आत्मा का अस्तित्व मान लिया जाता है, व अन्य पदार्थों से भिन्न अपनी आत्मा को ही ''मैं'' मान लिया जाता है तब जो विज्ञान बनता है वह अध्यात्म विज्ञान या अध्यात्म कहलाता है।

मात्र भौतिक पदार्थों के अध्ययन से टी.वी., वी.सी.आर., टेलिफोन, परमाणु ऊर्जा जैसे चमत्कार समझे जा सकते हैं। अध्यात्म विज्ञान में जीव द्रव्य अधिक हो जाने से स्थिति और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। कुछ तथ्यों को समझना अधिक सरल हो जाता है व कुछ रहस्यों को समझने हेतु नये प्रश्न बनने लगते हैं।

आगे बढ़ने के पूर्व पाठकों से हम निवेदन करना चाहते हैं कि जिन्हें अध्यात्म में रूचि अल्प है वे पहले द्वितीय अध्याय को कृपया पढ़ें। वहां जीवन की समस्याओं का विश्लेषण एवं समाधान सामान्य तर्कों की सहायता से किया गया है। अध्यात्म में आस्था न रखने वाले पाठक भी प्रथम दो अध्यायों का लाभ ले सकते हैं। तृतीय अध्याय में अध्यात्म का अल्प प्रवेश भौतिक विज्ञान के विस्तार के साथ किया गया है। चतुर्थ अध्याय अध्यात्म में रूचि रखने वाले पाठकों के लिये उपयोगी है। आध्यात्मिक रूचि रखने वाले पाठकों के अतिरिक्त जिन्हें प्रथम तीनों में से कोई भी अध्याय रूचिकर लगा हो उन्हें भी इस चतुर्थ अध्याय से लाभ मिलने की संभावना है।

4.1 आध्यात्मिक विकास की अवस्थाएं

अध्यात्म द्वारा तनावों में कमी होने की दृष्टि से हम निम्नांकित चार अवस्थाओं पर विचार कर सकते हैं। ये अवस्थाएं उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विकास की अवस्थाएं हैं।

1) अध्यात्म की पूर्ण एवं सच्ची समझ न हो किन्तु आंशिक रूप से प्रकृति की इस व्यवस्था में विश्वास हो कि जो कुछ भी हमारे साथ घटित होता है वह हमारे ही कर्मों का फल है।

2) अध्यात्म एवं प्रकृति की व्यवस्था की सच्ची समझ हो एवं उस पर विश्वास हो।

3) उपर्युक्त विश्वास एवं सच्ची समझ के अनुसार शनैः शनैः जीवन को सुधारने हेतु नियमित आध्यात्मिक अभ्यास करने की प्रक्रिया जीवन में विद्यमान हो।

4) सभी प्रकार के तनावों, भय, चाह आदि से मुक्त अवस्था।

इन चारों में से प्रथम अवस्था प्रारंभिक अवस्था है। सच्चे अर्थों में यह अवस्था आध्यात्मिक क्षेत्र की सीमा से बाहर किन्तु सीमा के ईर्द-गिर्द है। जैसे एक सुन्दर बगीचे में प्रवेश करने के पूर्व भी बगीचे की बहार नज़र आ जाती है एवं उसकी शीतलता व फूलों की खुशबू का लाभ मिलना प्रारम्भ हो जाता है, उसी तरह प्रथम अवस्था में भी हमें बहुत शान्ति मिल सकती है। प्रकृति की व्यवस्था में जितना विश्वास हमें होगा उतने ही तनाव हमारे कम होते चले जायेंगे। अपने ही कर्मों का फल मानने से दूसरों की प्रति आक्रोश भी उसी अनुपात में कम हो जायेगा जिस अनुपात में हमें कर्म व्यवस्था में विश्वास है।

4.2 सच्ची आध्यात्मिक समझ एवं विश्वास वाली अवस्था

अध्यात्म तथा प्रकृति की सच्ची समझ एवं उस पर विश्वास से ही सही मानों में अध्यात्म प्रारम्भ होता है। मैं कौन हूँ ? एवं जो कुछ भी मेरे जीवन में घटित होता है उसका कारण क्या है ?

इन प्रश्नों के उत्तर विभिन्न ग्रन्थों में हजारों पृष्ठों में मिल सकते हैं। यहाँ संक्षेप में ही इनकी चर्चा करना संभव होगा।

4.2 (क) मैं कौन हूँ ?

इस प्रश्न का उत्तर अनेकान्तात्मक होगा। जब हम अपने घर का दरवाजा खुलवाने हेतु घर के अन्दर से यह प्रश्न सुनते हैं, 'कौन ?' तो हम

बाहर से जो उत्तर देते हैं वह उस परिस्थिति में ठीक उत्तर होता है। जब हम किसी कार्यालय में किसी कार्य हेतु जाते हैं व अधिकारी सर्वप्रथम यह जानना चाहता है या प्रश्न पूछता है कि 'आप कौन हैं ?' तब हम संदर्भ के अनुसार अपने नाम के साथ हमारा पद या अपनी फर्म का नाम या पिता का नाम या पति का नाम आदि बताते हैं। हम इतनी जानकारी देते हैं कि जिस कार्य को उस अधिकारी से करवाना चाहते हैं उस कार्य से हमारा रिश्ता उस अधिकारी को समझ में आ जाए। अनेकांतवाद ऐसे उत्तर को भी इस परिस्थिति में हमारे उचित परिचय के रूप में मान्यता प्रदान करता है।

इसी प्रकार विभिन्न परिस्थितियों में हमारा परिचय विभिन्न रूपों में होता है। कभी छविग्रह के लिए हम 'दर्शक' होते हैं तो कभी ट्रेन के 'यात्री' होते हैं तो कभी वकील के लिए 'मुवक्किल' होते हैं।

इस प्रकार हमारे परिचय परिस्थिति के अनुसार बदलते जाते हैं। हर जगह हमें परिचय देना होता है व कोई भी हमारे सारे परिचय नहीं सुनना चाहता है। आप बैंक में खाता खुलवाने जायें व वहां अपना परिचय देते हुए कहें कि मैं अमुक का पति हूँ, अमुक का मुवक्किल हूँ, अमुक ट्रेन का यात्री हूँ, आदि...आदि... तो बैंक मैनेजर पागल समझेगा।

सारांश यह है कि 'मैं कौन हूँ' यह प्रश्न ऐसा है जिसके हजारों उत्तर संभव हैं किन्तु प्रश्नकर्ता इसके हजारों उत्तर हमसे नहीं सुनना चाहता है। हर व्यक्ति कुछ ही पंक्तियों में इस प्रश्न का उत्तर चाहता है।

इसी बात को अब हम अध्यात्म के क्षेत्र में लाते हैं। अध्यात्म के क्षेत्र में प्रश्नकर्ता हम स्वयं हो जाते हैं। यदि हम स्वयं स्वयं से यानी हमारी आत्मा हमारी आत्मा से ही यह पूछे कि 'मैं कौन हूँ' व हम हजारों उत्तर न चाहते हुए कुछ ही पंक्तियों में उत्तर चाहे तो जो भी उचित उत्तर होगा वही इस प्रश्न का आध्यात्मिक उत्तर रहेगा।

हम पहले यह कह चुके हैं कि अध्यात्म प्रत्येक प्राणी में आत्मा का अस्तित्व, व अन्य पदार्थों से भिन्न अपनी आत्मा को ही 'मैं' मानता है। इसे ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि हमारे तथाकथित शरीर के साथ जो ज्ञान गुण वाली, आँखों से भी न दिखाई देनी वाली, अविनाशी चेतना या आत्मा है वह मैं हूँ।

बदलता परिचय एवं स्थायी परिचय

'मैं कौन हूँ ?' प्रश्न का आध्यात्मिक उत्तर थोड़ा और अधिक विशेष है। यदि इतना ही उत्तर होता तो इसे प्रश्नोत्तर के रूप में हम यहां नहीं उठाते क्योंकि अध्यात्म की शुरूआत में ही यह कहा जा चुका है कि अध्यात्म अपनी आत्मा को ही 'मैं' मानता है। आगे बढ़ने के पूर्व एक उदाहरण पर विचार करते हैं।

यदि कोई मुझसे पूछे कि मेरे उज्जैन में स्थित स्थायी निवास का पता क्या है तो इसके संभावित निम्नांकित दो उत्तरों पर विचार करते हैं –

(1) मेरे निवास का पता 220, विवेकानन्द कॉलोनी, उज्जैन (म.प्र.) है। यह मकान दो मंजिला है व रंग से पुता हुआ है। क्यारी में गुलाब के फूल लग रहे हैं व कैक्टस के भी गमले मकान में दिखाई देंगे।

(2) मेरे निवास का पता 220, विवेकानन्द कॉलोनी, उज्जैन (म.प्र.) है।

स्थायी परिचय के अभाव में बदलते परिचय से परेशानी

इन दो उत्तरों में से पहला उत्तर विस्तृत है किन्तु यह परिचय कुछ ही महीनों या वर्षों बाद गलत सिद्ध हो सकता है, क्योंकि हरा रंग, गुलाब के फूल, कैक्टस, जो आज दिखाई देते हैं वे बदल सकते हैं। किन्तु जिस मित्र ने अपनी डायरी में दूसरा उत्तर लिखा है उसे यह मकान कुछ वर्षों बाद भी मिल सकेगा। आप कह सकते हैं कि जिसने पहला उत्तर अपनी डायरी में लिखा है वह भी कुछ वर्षों बाद जब मकान का रंग हरा न होकर पीला हो जायेगा या गुलाब के फूल की क्यारी न रहेगी तब भी पहले उत्तर को याद रखने वाला विवेक बुद्धि के अनुसार 220, विवेकानन्द कॉलोनी, उज्जैन को ही मुख्य आधार मानकर इस मकान को पहचान सकता है। इस तर्क का प्रति उत्तर यही है कि आपके तर्क ही यह स्वीकार कर रहे हैं कि डायरी में लिखे हुए पहले उत्तर की कांट–छांट विवेक बुद्धि से करके दूसरे उत्तर को ही मुख्य मानना है। यानी प्रश्नकर्ता स्वयं स्वीकार रहा है कि पहले उत्तर में कांट–छांट की आवश्यकता समय–समय पर हो सकती है। व यदि कांट–छांट मे मुख्य बिन्दु मानने में भूल हो गई तो हानि होगी। अर्थात् यदि हरे रंग को या गुलाब के फूलों को ही मुख्य बिन्दु मान लिया व 220 को भूल गये तो हानि होगी।

इस उदाहरण से हम यह बताना चाहते हैं कि मकान के पते के मामले में मकान का नंबर, कॉलोनी का नाम एवं शहर के अतिरिक्त जो भी जानकारी मकान के रंग, गुलाब के फूल, कैक्टस के कांटे, आदि के बारे में है वह सब मकान ढूंढने में बाधक भी हो सकती हैं। हाँ, यदि हमें मुख्य जानकारी (नंबर, कॉलोनी, शहर) ध्यान में रहे व मुख्य जानकारी को ही प्रमुखता देने की मान्यता रहे तो कदाचित अतिरिक्त बदलने वाली जानकारी किसी रूप में सहायक भी हो सकती है।

इस उदाहरण का 'मैं कौन हूँ' विषय की आध्यात्मिक चर्चा में बहुत उपयोग हो सकता है। जैसे मकान के पते के मामले में मकान नंबर, कॉलोनी एवं शहर मुख्य हैं व मकान का रंग, गुलाब, कैक्टस आदि बदलने वाले हैं, इसी प्रकार जो कुछ भी हमारी आत्मा में स्थायी है उसे ही हमारी आत्मा का मुख्य परिचय मानना चाहिए।

मुझे अमुक आदमी को देखते ही गुस्सा आता है यह बदलने वाला परिचय है। मुझे कूलर की ठंडी हवा से प्रसन्नता मिलती है यह बदलने वाला परिचय है। मैं देश की दशा से दुःखी हूँ यह बदलने वाला परिचय है।

अतः मकान के रंग एवं मकान की क्यारी के फूलों की तरह ये सभी मेरे बदलने वाले परिचय हैं व इन बदलने वाले परिचयों को यदि हम 'मैं' मान लेंगे तो हमें निराशा या तनाव या अहंकार हाथ लग सकते हैं। कैसे ? जरा विचार करते हैं। मकान के मामले में तो स्पष्ट है कि रंग के आधार पर किसी मकान को याद रखेंगे तो रंग बदलने पर मकान पर नहीं पहुँच पायेंगे। हमारे बारे में भी यदि हमने हमारा परिचय बदलने वाली अवस्थाओं के आधार पर माना तो सुहावनी स्थिति के बदलते ही निराशा होगी व वर्तमान में अप्रिय स्थिति होने पर दुःख होगा या अपराध भाव होगा।

बदलने वाले परिचय को स्थायी परिचय मानने से तनाव

उदाहरण के रूप में एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना करें जो अपना परिचय एक अच्छी वैज्ञानिक प्रतिभा के रूप में मानता है। जब तक इसी मान्यता के अनुसार उसके कार्य होते जाएं व समाज भी उसको वैज्ञानिक मानती रहे तब तक तो सब ठीक चल सकता है किन्तु जब एक के बाद एक परिस्थितियां, स्वास्थ्य के कारण से या पारिवारिक कारण से या राजनीति के कारण से, ऐसी हो कि वह वैज्ञानिक कार्य न कर सके तब उसको बहुत परेशानी

होगी क्योंकि उसके 'मैं वैज्ञानिक हूँ' वाले परिचय का अन्त हो रहा है। इसके विपरीत कोई व्यक्ति वैज्ञानिक कार्य तो करता रहे किन्तु अपना अस्तित्व (identity) इस रूप में न माने यानी इसे अपना बदलता हुआ परिचय ही माने तो उसे विपरीत परिस्थिति का सामना करने में बहुत कम कठिनाई होगी। कोई आश्चर्य नहीं कि ऐसा व्यक्ति मानसिक तनाव की कमी के कारण बहुत अच्छे वैज्ञानिक कार्य कर सके। यही बात अपने आपको बड़े परिवार वाला, धनवान, अच्छा खिलाड़ी, अच्छा राजनीतिज्ञ, अच्छा व्यापारी, अच्छा एक्टर आदि मानने की स्थिति में लागू होती है। बदलने वाले परिचय को बदलने वाला परिचय मानने में तनाव अल्प है एवं स्थायी परिचय को पहचानना लाभदायक है।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि कोई व्यक्ति अच्छा खिलाड़ी है व उसे अच्छे खिलाड़ी के रूप में पूरे विश्व में सम्मान मिल चुका है व मिल रहा है। वह अब उम्र के कारण खेल से रिटायर हो गया है किन्तु अब भी वह अपने आपको भूतपूर्व प्रसिद्ध खिलाड़ी के रूप में मानते हुए प्रसन्न रहता है। यानी अब वह खिलाड़ी नहीं है यह स्वीकार करते हुए भी भूतपूर्व खिलाड़ी की स्मृतियों के आधार पर वर्तमान में प्रसिद्ध एवं प्रसन्न है। ऐसे व्यक्ति को बदलने वाले परिचय के आधार पर अपना परिचय या अस्तित्व मान लेने में क्या परेशानी हो सकती है? यही उदाहरण भूतपूर्व राष्ट्रपति, भूतपूर्व शासकीय अधिकारी, भूतपूर्व न्यायाधीश आदि पर भी लागू हो सकता है। इसी प्रश्न को आगे बढ़ाते हुए यह भी कहा जा सकता है कि कोई अपना परिचय अच्छे धनी के रूप में माने व पूरे जीवन में उसे धन की कमी नहीं रही है या नहीं रहने वाली हो तो उसे अपना परिचय धनी मान लेने में क्या हानि है ?

इसके समाधान हेतु हम यह विचार कर सकते हैं कि यदि एक भूतपूर्व खिलाड़ी अपना परिचय एक प्रसिद्ध खिलाड़ी के रूप में मानता था व अब भी वह प्रसिद्ध है तो उसको यश में बदलाव महसूस नहीं होगा। फलतः उसकी इस प्रसिद्धि से जुड़ी हुई प्रसन्नता में अन्तर नहीं आयेगा। खेलना उसने चाहे बन्द कर दिया है किन्तु प्रसिद्धि बन्द नहीं हुई है अतः उसकी प्रसिद्धि की भूख शान्त होने से वह प्रसन्न है। किन्तु जब कुछ समय बाद जनता या समाचार पत्र उसका उल्लेख करना बंद कर देंगे तब उसे लगेगा कि अब वह प्रसिद्ध नहीं रहा है। तब उस बदलाव में उसे निराशा होगी। सारांश यह है कि जिस रूप में वह अपना परिचय या अस्तित्व मानता है उस रूप में बदलाव आते ही परेशानी या निराशा या तनाव हो सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक यह कहते हैं कि स्वयं के बारे में स्वयं की धारणा (self image), स्वयं के बारे में जनता की धारणा (public image), एवं स्वयं की छवि के बारे में आदर्श चाह (ego ideal) में जितना अधिक अन्तर होता है उतनी अधिक अशान्ति होती है।

चाहे भूतपूर्व प्रसिद्ध खिलाड़ी हो या भूतपूर्व राष्ट्रपति, हर व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के तनाव से ग्रसित है। हम यह कहना चाहते हैं कि प्रत्येक तनाव का कारण या तो अपने से अन्य किसी और के परिचय (या अस्तित्व) में अपना परिचय (या अस्तित्व) मान लेना है या अपने बदलते हुए परिचय को बदलता हुआ परिचय न मानकर उसे अपना स्थायी परिचय मान लेना है। वर्तमान में तनाव का कारण पारिवारिक अशान्ति हो या स्वास्थ्य हो या यश में कमी हो या अपराध भाव हो या और कुछ हो, जो भी कारण हो उसका विश्लेषण करने पर इसी सिद्धान्त की पुष्टि होगी कि अपने बदलते हुए परिचय को अपना असली परिचय मानना ही मूलतः अशान्ति का कारण है। इसी तथ्य को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि दूसरे में ''मैं पना'' या बदलती हुई अवस्थाओं में ''मैं पना'' मानना ही मूलतः तनावों का या दुःख का कारण बनता है।

स्थायी परिचय

'मैं कौन हूँ' इस प्रश्न का आध्यात्मिक उत्तर होता है – मैं आत्मा हूँ। यह विस्तार से ऊपर बताया गया है कि मुख्य या स्थायी परिचय जाने बिना आत्मा का बदलता हुआ परिचय परेशानी का कारण बन सकता है। यह भी विस्तार से यहाँ चर्चित हुआ है कि बदलते हुए परिचय को अपना असली परिचय मान लेना कई तनावों का कारण बन सकता है।

स्थायी परिचय का अर्थ है– ऐसा परिचय जो सदैव एक जैसा रहे। भूतकाल, वर्तमान, एवं भविष्य, तीनों कालों में जो समान हो, अचल हो ऐसे परिचय को स्थायी परिचय कहा जाता है।

सरल शब्दों में कहा जाये तो आत्मा कभी चींटी के शरीर में विराज़मान था या आज मनुष्य के शरीर को धारण किये हुए है या अगले जन्म में कोई और शरीर धारण करे, इन सभी बदलती हुई अवस्थाओं में आत्मा में जो

बदलाव आता है वह आत्मा का स्थायी परिचय नहीं है। इन सभी बदलती हुई अवस्थाओं में भी आत्मा का जो भाव स्थायी या एक जैसा रहता है वह आत्मा का स्थायी परिचय बनाता है। मेरी आत्मा में जो स्थायीपना है वही मेरा स्थायी परिचय है। आध्यात्मिक दृष्टि से वही मैं हूँ। इस परिचय में मैं 'अनेक' प्रकार का न होकर 'एक– ही रहता हूँ।[1]

स्पष्ट है कि आत्मा के स्थायी परिचय के अनुसार आत्मा न केवल दूसरे पदार्थों से भिन्न है अपितु मन, बुद्धि, इच्छाओं, विकल्पों, वासनाओं से भी परे है क्योंकि ये सभी बदलते हैं। इस प्रकार आत्मा के स्थायी परिचय में आत्मा सदैव एक जैसा एवं अन्य से भिन्न है।

आत्मा के कई गुण आत्मा के साथ सदैव रहते हैं किन्तु अचेतन पदार्थों से भिन्नता दर्शाने वाले आत्मा के दर्शन एवं ज्ञान गुणों का कथन प्रधानता से किया जाता है।

अपनी आत्मा के स्थायी परिचय को बताने वाली आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित निम्नांकित पंक्तियाँ बहुत सुन्दर हैं –

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणयइओ सदारुवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि।।
(समयसार, गाथा क्र. 38)

इसका भावार्थ यह है कि मैं सदैव एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शनज्ञानमय हूँ अरूपी हूँ। किंचित्मात्र भी अन्य पर पदार्थ परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है, यह निश्चय है।

इसी स्थायी परिचय की तरफ ध्यान दिलाते हुए आ. अमृतचन्द्र कहते हैं–

शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायि भावत्वमेति।
(समयसार, कलश क्र. 138)

अर्थात् यह आत्मा शुद्ध है निजरस से परिपूर्ण है व स्थायीभावत्व को प्राप्त है। आ. अमृतचन्द्र की निम्नांकित पंक्ति भी बहुत मनोहारी है –

---

[1] शास्त्रीय भाषा में कर्म चेतना व कर्मफल चेतना को बदलता हुआ परिचय कहा जाता है। परम पारिणामिक भाव, ज्ञानचेतना, त्रिकाली ध्रुव जैसे शब्दों से आत्मा के स्थायी परिचय का ज्ञान कराया जाता है।

शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।

(समयसार, कलश क्र. 185)

अर्थात् मैं तो सदा शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही हूँ।

आत्मा या स्वयं के संबन्ध में निम्नांकित सुन्दर उद्धरण भी विचारणीय है। श्रीमद्भगवद् गीता में अर्जुन को श्रीकृष्ण निम्नांकित रूप से समझाते हैं कि वह कौन हैं :

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

(श्रीमद् भगवद्गीता, श्लोक क्र. 3.42)

अर्थात् शरीर से परे (श्रेष्ठ, बलवान और सूक्ष्म) इंन्द्रियां, इन्द्रियों से परे मन और मन से परे बुद्धि है एवं इस बुद्धि से परे 'वह' यानी आत्मा है।

इस संदर्भ में रामचरित मानस की भी निम्नांकित पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं

योग वियोग भोग भल मंदा, हित अनहित, मध्यम भ्रम फन्दा।
जन्म मरण जहं लगि जगजालू, संपत्ति विपत्ति कर्म अरू कालू।।
धरणि धाम धन पुर परिवारू, स्वर्ग नरक जहं लगि व्यवहारू।
देखिय-सुनिय गुनिय मन माहीं, माया कृत परमारथ नाहीं।।

ये पंक्तियाँ अयोध्या काण्ड में लक्ष्मण-निषाद संवाद के प्रसंग में लिखी गई हैं। इन पंक्तियों के माध्यम से लक्ष्मण निषादराज को यह समझाना चाह रहे हैं कि योग-वियोग, जन्म, मरण, संपत्ति-विपत्ति, धन, धरती, गांव, परिवार, स्वर्ग, नरक आदि माया कृत हैं व परमार्थ नहीं हैं। यहां बदलने वाली अवस्थाओं के सन्दर्भ में 'माया' शब्द का प्रयोग किया है व स्थायी अविनाशी तत्व को परमार्थ कहा जा रहा है।

अमरीकी मनोवैज्ञानिक लूई है, अपनी पुस्तक 'You Can Heal Your Life' में लिखती हैंः-

"I am now perfect, whole and complete. I will always be perfect, whole and complete"

अर्थात् मैं परिपूर्ण हूँ एवं सदैव परिपूर्ण ही रहूँगी।

Feeling Good शीर्षक वाली प्रसिद्ध पुस्तक के अमरीकी लेखक डेविड बर्न एक मनोवैज्ञानिक एवं मनोचिकित्सक हैं व अत्यन्त निराश व्यक्तियों की चिकित्सा करने के विशेषज्ञ हैं। कई व्यक्तियों की आत्महत्या करने की मनोदशा समझकर उनकी मनोचिकित्सा डॉ. बर्न ने की है व इस दिशा में बहुत अनुसंधान कार्य किया है। उनकी मनोचिकित्सा का प्रमुख मंत्र यही है कि स्वयं की दृष्टि में स्वयं का मूल्य (self worth) सदैव समान रहना चाहिए। उनके अनुसार हमारी दृष्टि ऐसी होना चाहिए कि हमारा मूल्य हमारी निगाहों में कभी भी न तो कम हो और न ही ज्यादा। सदैव स्थिर रहे।

अमरीकी मनोवैज्ञानिक डॉ. वेन डायर जो कि विश्व में सर्वाधिक विक्रय वाली एक पुस्तक (शीर्षक : Your Erroneous Zones) के लेखक हैं, अपनी पुस्तक (शीर्षकः You'll See It When You Believe It) के प्रारंभिक अध्याय में लिखते हैंः-

"The principles in this book start with the premise that you are a soul with a body, rather than a body with a soul. That you are not a human being having a spiritual experience, but rather a spiritual being having a human experience."

इन पंक्तियों का भावार्थ यह है कि आप आत्मा हैं जिसके साथ शरीर लगा हुआ है, न कि शरीर हैं जिसके साथ आत्मा लगा हुआ है। आप चैतन्य अनुभव वाले मनुष्य न होकर, आप स्वयं चैतन्य तत्व हैं। इसी पुस्तक के अन्तिम अध्याय के निम्नांकित शब्द भी ध्यान देने योग्य हैं -

"It is like having a guardian angel or a loving observer as a part of your consciousness, a companion that you are always having compassionate silent conversations with, a consciousness behind your form. That part is always perfect. There is no struggle or suffering in that part of you. That is your transcendent dimension of thought."

इन पंक्तियों का भावार्थ यह है कि आपका एक भाग ऐसा है जहाँ कोई संघर्ष नहीं है, कोई कष्ट नहीं है, सदैव परिपूर्ण है। वह सदैव एक दैवीय सहारे की तरह आपका साथी है जो आपसे चुपचाप बातें करता रहता है।

'मैं कौन हूँ' विषय पर चर्चा का समापन करते हुए बैंक के एक कैशियर का उदाहरण लेते हैं। यह कैशियर किसी को रूपये दे रहा होता है या ले रहा होता है। उसकी अनेकान्त दृष्टि उस समय कितनी अच्छी होती है। एक तरफ देने या लेने में पूरी सावधानी रखता है तो दूसरी तरफ उसी समय इसका भी उसे विश्वास एवं ज्ञान रहता है कि यदि किसी ने लाख रूपये जमा कराये हैं तो उन रूपयों से वह धनवान नहीं हो रहा है व कोई लाख रूपये ले रहा होता है तो गरीब नहीं हो रहा है।

'मैं कौन हूँ' की अनेकान्त समझ से ऐसा ही अनेकान्त हमारे जीवन में उतरेगा। हमारी क्रियाएं इस प्रकार होंगी कि बैंक कैशियर के अनेकान्त की तरह समस्त क्रिया-कलापों के लिये किसी सीमा तक अपने को जिम्मेदार मानने के साथ हर समय हमें यह भी ध्यान में रहेगा कि हमारी जेब में न तो कुछ आ रहा है और न ही हमारी जेब से कुछ जा रहा है।

ऐसी दृष्टि के साथ जो कार्य भी हमारे शरीर, वाणी एवं मन से होते रहेंगे उनमें इतनी विशेषता, विशालता एवं सुगन्ध होगी कि न केवल हम स्वयं अपितु हमारा पर्यावरण भी सुवासित हो उठेगा।

'मैं कौन हूँ' से संबधित अनेकान्त की इस चर्चा का सारांश सारणी में दिया जा रहा है।

सारणी क्रमांक 9 (प्रश्न एक, उत्तर अनेक)

मैं कौन हूं?

जब अन्य द्वारा हमसे यह पूछा जाये - ' आप कौन हैं ?, तब उत्तर निम्नांकित प्रकार के होंगे	जब यह प्रश्न हम स्वयं ही स्वयं से पूछें तब उत्तर दो प्रकार के होंगे ।	
(व्यावहारिक परिचय) मनुष्य, भारतीय, अमरीकी, पुत्र, मित्र, खिलाडी, व्यापारी,विद्वान, साधु, सुन्दर, धनवान.......। (उचित विशेषणों एवं संबंधों सहित उक्त पदवियाँ)	(बदलने वाला परिचय) अभिमानी, लालची, क्रोधी, दुखी, प्रसन्न (उचित विशेषणों एवं संबंधो सहित उक्त पदवियाँ)	(स्थायी परिचय) सदैव एक जैसा हूँ, ज्ञान एवं चेतना लक्षण वाला हूँ। समस्त विकारों व वासनाओं से परे हूं । समस्त अन्य पदार्थों से पृथक हूं।
इसकी उपयोगिता क्या है ? लोक व्यवहार इस प्रकार के उत्तर से ही चलता है।	इसकी उपयोगिता क्या है ? इस परिचय से हमें ज्ञात हो सकता है कि हमारी आत्मा का विकास कितना हुआ है । यदि तनावग्रस्त एवं दुखी है तो इसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा का विकास अल्प हुआ है । स्थायी परिचय को न समझने के कारण बदलते हुए परिचय को ही अपना स्थायी परिचय मान लेना दुख एवं तनावों का कारण बनता है ।	इसकी उपयोगिता क्या है ? यह शाश्वत वास्तविकता है जिसकी स्वीकृति एवं समझ में सुख एवं अस्वीकृति में दुख है । इस सुख या आनन्द की प्राप्ति हेतु इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं होती है ।
सावधानी 1. आवश्यकतानुसार पर्याप्त एवं सही परिचय की समझ से व्यक्ति की प्रामणिकता बनती है । 2. दुनिया के सामने हम कई रूपों में होते हैं किन्तु विभिन्न रूपों में रहते हुए भी हमारे असली या स्थायी परिचय को नहीं भूलना चाहिये ।	सावधानी हम स्वयं हमारे सामने भी विभिन्न रुपों में बदलते हुए आते हैं। किन्तु इन सभी विभिन्न रुपों में रहते हुए भी हमारे असली या स्थायी परिचय को नहीं भूलना चाहिये। बदलते हुए रुपों को स्थायी मानने की भूल भी नहीं होना चाहिये।	सावधानी जिस प्रकार निवास स्थान का स्थायी पता बताने हेतु मकान का रंग बताना आवश्यक नहीं होता है, रंग का उल्लेख गौण किया जाता है, इसका अर्थ यह नहीं होता कि मकान रंगहीन है। इसी प्रकार आत्मा के स्थायी परिचय के आधार पर अपने को समझने हेतु बदलते हुए परिचय या लौकिक परिचय को गौण करने की आवश्यकता है, नकारने की आवश्यकता नहीं है।

4.2 (ख) हमारे जीवन की समस्त घटनाओं के लिए जिम्मेदार कौन ?

$ 4.2 में उल्लेखित प्रश्न क्र. 2 इस प्रकार हैः जो कुछ भी मेरे जीवन में घटित होता है उसका कारण क्या है ?

इस प्रश्न की मूल भावना समझने हेतु एक सरल प्रश्न यह बन सकता है कि यदि मेरे नाम पर दस लाख रूपये की लाटरी खुलती है तो उसका कारण क्या है ? या यदि चौराहे पर एक्सीडेन्ट से मुझे चोट पहुँचती है तो उसका कारण क्या है ?

आधुनिक विज्ञान इसका अपूर्ण उत्तर देता है। इसके अनुसार लॉटरी में कोई भी नंबर निकल सकता था। प्रत्येक नंबर निकलने की संभावना समान थी। यह संयोग (chance) है कि यह नंबर आपका था। आधुनिक विज्ञान इससे अधिक नहीं कह सकता है। मेरा नंबर ही क्यों निकला ? इस प्रश्न का उत्तर आधुनिक विज्ञान के पास नहीं है। बहुत सूक्ष्म विवेचन करने वाला वैज्ञानिक मेरे नंबर निकलने का कारण लाटरी की मशीन में शुरू में क्या था व कितना उसे घुमाया गया उसके आधार पर बता सकता है। किन्तु पुनः नये प्रश्न हो जाते हैं कि मशीन को उतना ही क्यों घुमाया गया व शुरू में ऐसा ही क्यों था कि अन्त में मेरा नंबर निकाला। और अधिक सूक्ष्म विवेचना करने वाले इसका संबन्ध मशीन को घूमाने वाले व्यक्ति के शरीर के परमाणुओं, मानसिकता आदि एवं मशीन के पूर्व इतिहास के आधार पर कह सकते हैं। प्रश्न पुनः यह हो सकता है कि वे परमाणु, मानसिकता, इतिहास आदि वैसी अवस्था में ही क्यों थे कि उससे अन्ततोगत्वा दस लाख रूपये का लाभ मुझे मिला ?

प्रश्नों एवं उत्तरों की यह श्रंखला आगे से आगे बढ़ती रह सकती है किन्तु आज के वैज्ञानिक चिन्तन में कहीं भी यह गुंजाइश नहीं है जो यह बता सके कि मेरे नाम पर लॉटरी खुलना महज संयोग न होकर सृष्टि के अकाट्य नियमों पर आधारित है। 'महज संयोग' जैसे शब्द किसी अपेक्षा हमारी अज्ञानता ही बताते हैं।

शायद यह महज संयोग वाली अज्ञानता आइन्सटीन जैसे वैज्ञानिकों को स्वीकार नहीं है व आइन्सटीन जैसे वैज्ञानिक यही कहेंगे कि आज के अच्छे से

अच्छे कम्प्यूटर भी इसका हिसाब तो नहीं लगा सकते हैं कि लॉटरी से किसका नंबर निकलेगा किन्तु वैज्ञानिक चिन्तन इससे सहमत है कि सृष्टि के समस्त कण निश्चित नियमों के अनुसार ही हलन-चलन करते हैं अतः जो भी नंबर निकला है वह नियमों के अनुसार ही निकला है यानी उस परिस्थिति में वह नंबर निकलना न तो वैज्ञाानिक आश्चर्य है और न ही चांस। इसी प्रकार जिस परिस्थिति में मुझे जो भी लॉटरी का टिकट मिला है वह भी न तो वैज्ञानिक आश्चर्य है और न ही चांस।

इस प्रकार धुरंधर वैज्ञानिक चांस शब्द को नकारते हैं किन्तु यह प्रश्न फिर भी विचारणीय रह जाता है कि एक रूपया खर्च करके लाटरी टिकट तो लाखों व्यक्तियों ने खरीदें किन्तु मैंने ऐसा क्या विशेष किया था जिससे मुझे दस लाख रूपयों की प्राप्ति हुई।

जैसे कोई व्यक्ति हमारे कार्यालय में आये व हम यह पूछें कि ''आप कैसे पधारे ?'' तो इसका उत्तर यदि वह यह दे कि स्कूटर से आया या स्कूटर मुझे यहाँ तक ले आया तो यह उत्तर हास्यास्पद होगा। हम उनके आगमन का मूल प्रयोजन जानना चाहते हैं और वे आगमन की विधि बता रहे हैं।

कुल मिलाकर स्थिति यह है कि आधुनिक विज्ञान लॉटरी खुलने की विधि बता सकता है। किन्तु क्या मेरे किसी विशेष कार्य के कारण ही मेरे नाम पर लॉटरी खुली है ? इस प्रश्न का उत्तर हमें आज का विज्ञान नहीं दे पा रहा है। इसे आधुनिक विज्ञान के ज्ञान की सीमा (या अज्ञान का अस्तित्व) मानना युक्ति संगत होगा। इसके विपरीत इसे आधुनिक विज्ञान का अज्ञान न मानना आधुनिक विज्ञान के प्रति अंधविश्वास होगा। आधुनिक विज्ञान स्वयं स्वीकारता है कि जो कुछ भी अब तक विज्ञान ने जाना है उसकी तुलना में नहीं जाना हुआ ज्ञान यानी अज्ञान कई-कई गुना है।

अध्यात्म इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देता है। अध्यात्म जीवन को अनंत मानता है। अध्यात्म के अनुसार मेरी आत्मा के अनन्त जीवन के किसी बिन्दु पर या किन्हीं बिन्दुओं पर मेरे द्वारा ही ऐसा कुछ हुआ था जिससे अभी दस लाख की लॉटरी की प्राप्ति की प्रसन्नता मिली है। क्या किया था ? कब किया था ? अभी ही प्राप्ति क्यों हुई ? इतने वर्षो तक क्यों नहीं हुई ? इन सबके

उत्तर अध्यात्म में वर्णित कर्म–व्यवस्था से प्राप्त होते है। जैसे एक पुराना पुल किसी दिन टूटता है तो भौतिक विज्ञान यह स्वीकारता है कि पुल जहां से टूटा, जिस रूप में टूटा यह सब भौतिक विज्ञान के निश्चित नियमों के अन्तर्गत ही हुआ है। उसी तरह अध्यात्म विज्ञान के कर्म–सिद्धान्त के अनुसार जो कुछ भी होता है वह निश्चित नियमों के अन्तर्गत कारण–कार्य सिद्धान्त की नींव पर ही आधारित होता है। कर्म–सिद्धान्त में विश्वास करने वाले यह जानते हैं कि जीवन में अच्छा या बुरा जो भी घटित होता है उसके लिए हम ही जिम्मेदार होते हैं।

इस आध्यात्मिक समझ द्वारा हम हमारे कई तनाव कम कर सकते हैं। हमारे जीवन में कई घटनाएं ऐसी हो सकती हैं जिनमें हमें ऐसा लगता है कि दूसरों की गलती से हमें नुकसान हुआ है। नुकसान की पूर्ति हेतु हमारे जो भी लौकिक प्रयास होते हैं वे किसी अपेक्षा उचित या अनुचित हो सकते हैं किन्तु हमारे विचारों में जो तनाव एवं घृणा उस व्यक्ति के प्रति होती है उससे हमारा ही समय एवं भविष्य कष्टप्रद बनता है। इसके विपरीत जब हम हमारी हानि के लिए दूसरे को जिम्मेदार न मानकर मात्र निमित मानते हैं तब तनाव बहुत कम रह जाते हैं। इतना सब पढ़ लेने के बाद पाठक के मस्तिष्क में कई प्रश्न उपस्थित हो सकते हैं। संभावित प्रश्नों का समाधान अनेकान्त व्याख्या द्वारा हो सकता है। एक उदाहरण द्वारा एकान्त व्याख्याओं एवं अनेकान्त व्याख्याओं का अन्तर समझने से कई प्रश्नों के हल निकल सकते हैं।

उदाहरण हेतु हम एक घटना पर विचार करें। घटना यह है कि एक चोर ने एक व्यापारी को यातना पहुँचाई व उसका धन छीना। इस घटना से संबन्धित एकान्त कथन निम्नांकित हो सकते हैं –

एकांत कथनः उस चोर ने व्यापारी के जीवन में आकर व्यापारी को यातना पहुँचाई व धन छीना। अतः चोर सजा का पात्र है।

दूसरा एकांत कथनः अध्यात्म के अनुसार व्यापारी की हानि एवं यातना उसकी ही आत्मा द्वारा किये गए पिछले कर्मों का फल है अतः चोर दोषी नहीं है। चोर को सजा नहीं मिलना चाहिए।

अब अनेकान्त दृष्टि से देखें तो निम्नांकित 4 बिन्दु विचारणीय होंगे।

अनेकान्त : (1) चोर ने लालच किया। चुराने के बुरे भाव किये। चुराने का बुरा प्रयत्न किया। चोर के बुरे भाव एवं बुरे प्रयत्न हेतु चोर जिम्मेदार है व सजा का पात्र है।

(2) व्यापारी की हानि उसके ही कर्मों का फल है।

(3) अध्यात्म पर विश्वास रखने वाला व्यापारी उक्त बिन्दु में विश्वास के कारण हानि के लिए कम खेद महसूस करेगा। उसके तनाव कम होंगे।

(4) अध्यात्म को चूंकि व्यापारी ने समझा है, विश्वास किया है, श्रद्धा है, किन्तु जीवन में अभी अध्यात्म थोड़े ही अंशों में उतरा है, अतः व्यापारी अपने पुराने संस्कारों के वश स्वयं के हित की भावना से या जनहित की भावना से चोर को पकड़वाने व वापस धन प्राप्त करने के प्रयत्न करे तो कोई आश्चर्य नहीं।

इस उदाहरण से कई संभावित प्रश्न हल हो सकते हैं। एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न फिर भी यह रह गया है कि यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु उसके ही कर्मों का फल है व हत्यारे को उसके मारने के बुरे भावों व मारने के बुरे प्रयत्न की ही सजा मिलती है तो फिर ऐसा क्यों कहा जाता है कि हत्यारे ने अमुक व्यक्ति को मारा है ?

इसके समाधान में यह कहा जा सकता है कि कम शब्दों में अधिक तथ्य आ जाने की सुविधा से ही माँ बच्चे को कहती है कि 'आटा पिसा लाओ'। इस वाक्य में दो कथन आ गये हैं – ये गेहूँ पिसाने है व गेहूं का दलिया नहीं बनवाना है अपितु आटा बनवाना है। इसी प्रकार, 'उसने एक व्यक्ति को मारने का अपराध किया है', इस एक पंक्ति में तीन बातें आ जाती हैं – मारने का इरादा किया है, मारने का प्रयत्न किया है, व मारने का प्रयत्न आधा अधुरा न होकर पूर्ण हुआ है। स्पष्ट है कि तीन पंक्तियों के बदले एक पंक्ति का उपयोग अधिक सुविधाप्रद है व उस व्यक्ति के रिकार्ड एवं सजा की दृष्टि से भी कोई अन्तर नहीं पड़ता है अतः उक्त एक पंक्ति का उपयोग इस अपेक्षा से उचित ही

है। यानी मरने वाला अपने कर्मों के फल से मरता है किन्तु मारने वाला अपने मारने के बुरे भाव एवं प्रयत्न के कारण सजा का पात्र समाज में व प्रकृति की व्यवस्था में बनता है।

लाभ एवं उपकार की स्थिति में भी ऐसा ही अनेकान्त लागू होता है – (1) लाभ पाने वाले व्यक्ति के कर्मों के फल से लाभ मिलता है। (2) जिसने लाभ पहुँचाने का प्रयास किया है वह व्यक्ति उसके शुभ विचारों एवं शुभ प्रयत्नों के लिए प्रशंसा, प्रोत्साहन एवं प्रतिष्ठा का पात्र है। (3) लाभ पाने वाला आध्यात्मिक गृहस्थ लाभ पहुँचाने वाले व्यक्ति के प्रति यथायोग्य आभारी भी अनुभव करता है।

अब तक इस अध्याय में सच्ची आध्यात्मिक समझ एवं विश्वास का वर्णन किया है। सारांश रूप में ऐसी समझ की प्रमुख विशेषताएं निम्नानुसार व्यक्त की जा सकती हैं।

(1) यह मान्यता कि ''मैं आत्मा हूँ। शरीर, धन–दौलत, यश आदि मुझसे पृथक हैं, वे लक्ष्य प्राप्ति हेतु किसी रूप में साधन हो सकते हैं, किन्तु साध्य नहीं हैं।''

(2) साध्य या परम लक्ष्य यह है कि किसी भी प्रकार की चाह न रहे, यानी हम अपनी आत्मा में ही पूर्ण संतुष्ट रहे।

(3) अपने द्वारा किये गये अच्छे कार्यों एवं अच्छे परिणामों का अहंकार न हो। इसी प्रकार अपनी गलतियों एवं तथाकथित अप्रिय परिणामों को सुधारने की भावना हो किन्तु इनके आधार पर स्वयं को अपराधी नहीं माने।

(4) समझ के साथ विश्वास हो कि प्रकृति की व्यवस्था ऐसी है कि प्रत्येक अच्छे–बुरे कार्य का नियमानुसार अच्छा–बुरा परिणाम होता है।

(5) स्थायी परिचय की स्थायी परिचय के रूप में समझ एवं बदलते परिचय की बदलते परिचय के रूप में समझ हो।

4.3 आध्यात्मिक समझ को जीवन में उतारने का प्रयास

पहले $ 4.1 में अध्यात्म द्वारा तनावों में कमी होने की दृष्टि से आध्यात्मिक विकास की चार अवस्थाओं का उल्लेख किया था। पहली अवस्था में आध्यात्मिक समझ की अपूर्णता होती है किन्तु थोड़ा–थोड़ा झुकाव अध्यात्म

की तरफ रहता है। दूसरी अवस्था में अध्यात्म की समझ होती है व विश्वास होता है किन्तु क्रिया में इस आध्यात्मिक समझ का विशेष प्रभाव नहीं होता है। तीसरी अवस्था में आध्यात्मिक समझ वाला व्यक्ति अध्यात्म को जीवन एवं क्रिया में उतारने हेतु अभ्यास करने का प्रयत्न करता है। संक्षेप में इस तीसरी अवस्था के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा करना भी अध्यात्म का समग्र परिचय प्राप्त करने हेतु उपयोगी होगा।

अ, आ, इ, ई, ... या A, B, C, D, ... या गिनती सीखने हेतु हमने बचपन में जैसे अभ्यास किया है वैसे ही अध्यात्म को जीवन में उतारने हेतु भी अभ्यास की आवश्यकता होती है। अध्यात्म के क्षेत्र में नियमित अभ्यास को व्रत–नियम आदि नामों से जाना जाता है। जैसे संगीत के सुर याद करने मात्र से ही कोई संगीतज्ञ नहीं बन सकता है या जैसे वीणा बजाने की विधि के जानने मात्र से ही वीणा बजाने में निपुणता नहीं आती है वैसे ही अध्यात्म को समझ लेने मात्र से या आस्था रख लेने मात्र से ही तनाव आमंत्रित करने के, तनाव झेलने के एवं तनाव पहुँचाने के हमारे समस्त पुराने संस्कार नहीं टूटते हैं। इन पुराने संस्कारों को तोड़ने हेतु अध्यात्म के नियमित अभ्यास की आवश्यकता होती है।[1]

आध्यात्मिक अभ्यास हेतु हमें आध्यात्मिक अभ्यास की कई शाखाओं का पृथक–पृथक परिचय प्राप्त करना उपयोगी हो सकता है। सरलता की दृष्टि से हम विभिन्न शाखाओं को निम्नांकित वर्गों में समझ सकते हैं।

---

[1] आध्यात्मिक अभ्यास हेतु रत्नकरण्ड श्रावकाचार (श्रावकों के लिए) में आचार्य समन्तभद्र ने व प्रवचनसार की चरणानुयोगसूचक चूलिका में मुनियों के लिए आचार्य कुन्दकुन्द ने बहुत सुन्दर ढंग से समझाया है। और भी कई ग्रंथों में विश्व के विभिन्न आस्थावान विद्वानों ने व जैन आचार्यों ने शिष्य की योग्यता के अनुसार वर्णन किया है। मानव स्वभाव की समझ वाले सभी आचार्यों व विद्वानों ने यह ध्यान रखा है कि साधना अति कठोर न हो । यहां तक जैन मुनियों को भी यह समझाया गया कि साधना न तो बहुत कठोर हो और न ही बहुत मृदु हो । (देखिए प्रवचनकार गाथा 230 की आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा लिखित तत्व प्रदीपिका टीका)

(1) हमारी समझ व आस्था ठीक बनी रहे इस हेतु महापुरूषों की संगति, महापुरूषों के उपदेशों का अध्ययन, महान आत्माओं का स्मरण, आदि करने हेतु नियमित अभ्यास।

(2) शरीर, धन, यश आदि साध्य नहीं हैं अपितु साधन हैं। इसके अभ्यास हेतु अपने नियंत्रण में धन रखने की अधिकतम सीमा का समय-समय पर घटते क्रम में निर्धारण, यथायोग्य दान, शरीर एवं इन्द्रियों द्वारा प्रेरित वासना में शनैः शनैः कमी का अभ्यास तथा अन्य प्राणियों को बाधा पहुँचाने में कमी का अभ्यास।

(3) हमारे संपर्क में आने वाले व्यक्तियों पर उन्हें सुधारने की भावना या हमारी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के कारण जाने अनजाने में, हम कई नियंत्रण एवं आशाएं लगाते हैं। उन नियंत्रणों एवं आशाओं को सतत कम करते रहने का अभ्यास। इस अभ्यास के अन्तर्गत आगे बढ़ते हुए ऐसी स्थिति भी आती है कि किसी को परामर्श, सुझाव या अनुमति देने की आवश्यकता भी नहीं रहती है।

संक्षेप में इस अभ्यास को अन्य व्यक्तियों को अपने नियंत्रण में रखने से मुक्त करने का अभ्यास तथा अन्य व्यक्तियों एवं साधनों के नियंत्रण से स्वयं को मुक्त करने का अभ्यास कहा जा सकता है।

(4) मन के संकल्प-विकल्प में कमी करने हेतु निरंतर अभ्यास। इस हेतु समता भाव एवं आत्म ध्यान का अभ्यास किया जाना उपयोगी होता है।

4.4 आध्यात्मिक क्रियाओं की अनेकान्त समझ

i) शांति की चाह भी अशांतिकारक हो सकती है

धार्मिक व्रत, नियम, पूजा पाठ आदि भी साधन हैं, साध्य नहीं हैं । शांति की चाह भी अशांतिकारक हो सकती है। चाह यही रहे कि चाह का अभाव हो। चाह के अभाव की चाह भी चाह रूप में न रहे। ज्ञाता-दृष्टा भाव सहज रूप से बना रहे यही चरम लक्ष्य या पूर्ण तनाव रहित अवस्था है।

ii) सहारे से छूटने के लिए सहारा लेना

अध्यात्म के पथिक को महापुरूषों की संगति आदि का सहारा लेने की आवश्यकता प्रारंभ में होती है। किन्तु अध्यात्म का पथिक इस अनेकान्त को जानता है कि वह यह सहारा इसलिए ले रहा है कि अन्ततोगत्वा उसे किसी भी सहारे की आवश्यकता न रहे।

किस कार्य को हम अन्य पर आश्रित बनने की दिशा मानेंगे इसे समझने हेतु एक उदाहरण ले सकते हैं। किसी की पांव की हड्डी टूट जाने पर पांव पर प्लास्टर चढ़ाया जाता है व डॉक्टर विश्राम की सलाह देता है। इस क्रिया का उद्देश्य यह है कि इससे पांव की हड्डी हिलती नहीं है व हड्डी पर्याप्त समय तक न हिलने के कारण जुड़ जाती है। इस क्रिया में प्लास्टर, पलंग, डॉक्टर आदि का आश्रय इसलिए लिया है कि कुछ समय बाद हड्डी जुड़ जाने से व्यक्ति इस योग्य हो जायेगा कि अस्पताल व डॉक्टर के आश्रय की आवश्यकता न रहेगी। अतः यह अनेकांत समझने योग्य है कि यदि अन्य पदार्थों एवं व्यक्तियों का आश्रय इस तरह एवं इस उद्देश्य से लिया जाये कि आत्मा को भविष्य में उन्हीं एवं अन्य पदार्थों का आश्रय लेने की आवश्यकता न रहे तो ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि वह दिशा आत्मा को स्वावलम्बी बनाने की दिशा है। इसके विपरीत हड्डी के टूटने पर डॉक्टर के पास तो जायें पर उनसे मात्र गप्प ही लगाते रहें या प्लास्टर अपने टूटे हुए पांव पर न बंधवा कर कहीं और बंधवाए या प्लास्टर बंधवा कर वापस प्लास्टर तुड़वाना न चाहें या डॉक्टर और अस्पताल को छोड़ना ही न चाहे तो ऐसी स्थिति में यह कहा जायेगा कि ये समस्त आश्रय अन्ततोगत्वा व्यक्ति को आश्रय से मुक्त नहीं करेंगे यानी इसे इलाज नहीं कहा जायेगा। एक बात और इस संबन्ध में उल्लेखनीय है कि जब व्यक्ति स्वस्थ्य होकर इनसे स्वतंत्र होनेवाला हो तो प्लास्टर, रोगी का वाहन, रोगी का भोजन, नर्स की सेवा, खर्च किए जाने वाला धन आदि सभी रोगी को ठीक करने के साधन कहला सकते हैं। किन्तु जब कोई साधनों को ही प्यार करता रहे, साधनों को छोड़ना ही न चाहे, तो ये ही साधन बाधक नाम पा सकते हैं।

4.5 आध्यात्मिक अभ्यास की पूर्णता

अध्यात्म का अभ्यास करने वाले व्यक्ति के तनाव कम होते जाते हैं। अभ्यास की पूर्णता तब कही जाती है जब आत्मा समस्त तनावों एवं वासनाओं से रहित हो जाए। इस अवस्था में आत्मबल इतना उच्च हो जाता है कि फिर आत्मा में वासनाओं एवं तनावों का प्रवेश संभव नहीं होता है। यानी यह तनाव रहित, वासना रहित, भय रहित, चाह रहित, अवस्था सदा के लिए हो जाती है। आत्मा के आध्यात्मिक विकास की यह परम अवस्था है। प्रत्येक आत्मा में इस अवस्था को प्राप्त करने की क्षमता है। इस परम अवस्था में जब कोई आत्मा होती है तो इसे जैन दर्शन में परमात्मा कहा जाता है।

4.6 अध्यात्म से तनाव मुक्ति सरल क्यों है ?

यह प्रश्न जाने अनजाने में हर व्यक्ति अध्यात्म के व्याख्याताओं से पूछना चाहता है। एक व्यक्ति यह सोच सकता है कि अपना मन साफ रखो, अपना काम करो एवं ठाठ से रहो। यह अध्यात्म का सिरदर्द क्यों ?

बहुत संक्षेप में कुछ ही बिंदुओं पर चर्चा करने से अध्यात्म की महत्ता समझ में आ सकती है।

एक व्यक्ति निरपराधी है किन्तु झूठे गवाहों द्वारा उसे जेल की सजा मिल रही है। अध्यात्म के अभाव में उसकी मन की व्यथा क्या किसी उपाय से दूर हो सकती है? हाँ, फिल्म कहानी में अवश्य ऐसा व्यक्ति जेल की दीवार तोड़कर बाहर आ सकता है एवं अपने पक्ष में प्रमाण एकत्रित करके अपने को निरपराधी सिद्ध कर सकता है एवं विरोधियों का सफाया करके प्रसन्न हो सकता है। वास्तविक जगत में बिना अध्यात्म के या सांसारिक न्यायालयों से भी बढ़कर प्रकृति के न्याय की स्वीकृति के बिना ऐसे व्यक्ति की व्यथा साधारणतया दूर नहीं होती है। अध्यात्म द्वारा व्यक्ति धीर, वीर, गंभीर बनकर परिस्थिति के अनुसार समाधान व प्रसन्नता प्राप्त कर सकता है।

कई तनाव ऐसे भी होते हैं जो दूसरों को क्षमा किये बिना दूर हो ही नहीं सकते हैं। दूसरों को जब तक हम गलत मान रहे होते हैं तब तक सच्ची क्षमा संभव ही नहीं है। मजबूरी में मात्र शब्दों द्वारा उच्चारित क्षमा का भी महत्त्व है किन्तु तनाव कम करने में ऐसी क्षमा बहुत कम सहायक होती है। आदर्श क्षमा तो वह है जहाँ प्रथमतः ही दूसरे को अपनी हानि के लिए दोषी माना ही नहीं

जाए। जब दोषी ही नहीं माना तब क्षमा की आवश्यकता ही नहीं रही। आध्यात्मिक समझ की ट्यूब लाइट जलने में देरी के कारण कुछ समय के लिए यदि दोषी मान लिया, रूठ लिये, झगड़ लिये, किन्तु ज्यों ही अन्दर की आध्यात्मिक समझ बाहर प्रगट हो जाती है कि यह हानि तो मेरे ही किन्हीं कर्मों का फल है, त्योंही सच्ची क्षमा प्रगट होना शुरू हो जाती है व अल्प समय में ही तत्संबन्धी तनाव शिथिल हो सकते हैं।

इसी प्रकार कई तनाव ऐसे भी होते हैं जो स्वयं को क्षमा किये बिना दूर नहीं होते हैं। स्वयं के गलत निर्णय या निर्णय लेने में देरी से स्वयं की या परिवार के किसी सदस्य की बहुत बड़ी हानि हो जाये तो केवल पश्चाताप करते रहने से मन की अशान्ति दूर नहीं होती है। आध्यात्मिक व्यक्ति अपने स्थायी परिचय की समझ से अपने द्वारा किये गये कार्यों, विचारों एवं शब्दों को अपनी स्थायी सम्पत्ति नहीं मानता है। स्थायी परिचय की समझ से ज्ञानी अपनी बदलती हुई अवस्थाओं से अपनापन स्थापित नहीं करता है। जिस परिस्थिति में जिस समझ से जो गलत निर्णय हुआ था उस निर्णय को भी ज्ञानी प्रकृति की व्यवस्था का ही एक आवश्यक घटक मानता है। जो हानि-लाभ होते हैं वे सभी अस्थायी हैं। अन्ततोगत्वा स्थायी परिचय ही स्थायी है। एक हानि एक नये लाभ की जन्मदाता भी हो सकती है। अतः हानि-लाभ को उचित परिप्रेक्ष्य में देखने की रोशनी अध्यात्म से प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त जिस समझ एवं विवेक बुद्धि से वह दूसरों को क्षमा करता है उसी समझ एवं बुद्धि से वह खुद को भी क्षमा कर सकता है।

व्यक्ति के जीवन में ऐसे अवसर भी आ सकते हैं जब उसे लगे कि उसका सब कुछ लूट गया या उसका सब कुछ चला गया। व्यक्ति की समझ के अनुसार 'सब कुछ' की परिभाषा भिन्न-भिन्न हो सकती है। एक भावुक प्रेमी अपनी प्रेमिका की अन्यत्र शादी होने पर जब आत्महत्या कर लेता है तब उसके पीछे उसकी यही मान्यता रहती है कि उसका सब कुछ चला गया। यानी उसकी प्रेमिका से शादी ही उसके लिये सब कुछ थी। इसी प्रकार किसी के लिए धन ही सब कुछ है तो किसके लिए यश ही सब कुछ हो सकता है। कोई यह कहावत मानता है कि धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ गया किन्तु चरित्र गया तो सबकुछ गया। यानी अध्यात्म के अभाव में 'सबकुछ' की परिभाषा ऐसी है कि सबकुछ गुम हो सकता है, या सब कुछ जा सकता है या

सबकुछ छीना जा सकता है। अध्यात्म के अन्तर्गत अपना आत्मा एवं आत्मा का स्थायीभाव ही सबकुछ है व वह अविनाशी, शाश्वत, अचल एवं अटल है। अतः सच्ची आध्यात्मिक समझ में सबकुछ चले जाने की निराशा या तनाव की कोई संभावना नहीं बनती।

यहां कोई यह कह सकता है कि ये तो बहुत बड़ी-बड़ी बाते हैं। जीवन में सदैव नहीं आती हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए एक छोटे से उदाहरण द्वारा जीवन की सामान्य घटनाओं में अध्यात्म का महत्त्व बताना भी इसी प्रसंग में उचित होगा।

एक नवयुवक ने इंजीनियरिंग की डिग्री उच्च श्रेणी में प्राप्त की है। कई भिन्न-भिन्न स्थानों पर पक्षपात एवं अन्य अनैतिक कारणों से उसके बदले उससे कम योग्य नवयुवकों को नियुक्ति मिली है। इस समय वह बेरोजगार है। उसे न केवल स्वयं की नियुक्ति की चिन्ता है अपितु सम्पूर्ण व्यवस्था एवं देश पर आक्रोश है। आगे की तैयारी में मन नहीं लगता है। माता-पिता, शिक्षक आदि कई विधियों से उसे ठीक ढंग से खाने, पीने एवं रहने हेतु समझाते हैं किन्तु उसे समझ में नहीं आता है। इसके विपरीत एक दूसरा नवयुवक वैसी ही परिस्थिति से गुजर रहा है किन्तु वह आध्यात्मिक है। इस युवक को प्रकृति के न्याय पर आस्था है। स्वयं के कर्मों के फल पर आस्था है। यह दूसरा युवक भी अनैतिकता, पक्षपात एवं भ्रष्टाचार से प्रभावित है किन्तु इसका आक्रोश उपर्युक्त आध्यात्मिक समझ के कारण बहुत कम है। वह अपनी आगे की तैय्यारी उत्साह एवं उमंग से करता है। इसमें चिड़चिड़ापन नहीं है। स्पष्ट है कि आध्यात्मिक नवयुवक न केवल वर्तमान में प्रसन्न है अपितु भविष्य के प्रति भी आशान्वित है।

हिम्मत न हारकर ऐसा धीर-वीर नवयुवक न केवल स्वयं रोजगार प्राप्त कर सकता है अपितु जो कड़वाहट समाज में व्याप्त है उसे भी मिटाने का प्रयत्न करने की शक्ति उससे प्रकट हो सकती है।

जीवन के सभी क्षेत्रों में ये घटनाएं देखी जा सकती हैं। किसी लड़की को एक के बाद एक कई लड़के विवाह के लिए नापसन्द कर रहे हैं। किसी अधिकारी का प्रमोशन होना चाहिये था किन्तु उसका न होकर किसी जूनियर का हो गया है। किसी के पुत्र नहीं है। किसी के सन्तान नहीं है। किसी की सन्तान अयोग्य है। किसी को चुनाव का टिकट नहीं मिलता है जबकि उससे बहुत कम योग्य व्यक्ति को टिकट मिल गया है। किसी को ऐसा लगता है कि

दुनिया में वह अकेला है, कोई उस पर ध्यान नहीं देता है। इन सभी उदाहरणों में अध्यात्म की महत्ता उसी प्रकार देखी जा सकती है जिस प्रकार उपर्युक्त बेरोजगार नवयुवक के उदाहरण में वर्णित की गई है।

अध्यात्म की महत्ता इस वर्णन से बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है। किन्तु फिर भी एक धारणा ऐसी है जिसे मानते हुए कई व्यक्ति अध्यात्म से दूर रहना चाहते हैं। कुछ व्यक्ति यह मानते हैं कि भ्रष्टाचार एवं अनैतिक विधि से धन, यश, प्रभाव आदि अर्जित करना संभव है जबकि अध्यात्म को माना तो निर्धन हो जायेंगे। इतना ही नहीं, ऐसे व्यक्तियों की मान्यता यह भी रहती है कि निर्धनता का जीवन जीने के बदले अमीर बन कर तनाव झेलना ज्यादा अच्छा है।

इस प्रकार के व्यक्ति सामान्यतया वे होते हैं जिन्हें निर्धनता अपने आप में सबसे बड़ा तनाव लगती है। ऐसे व्यक्ति इस प्रकार की मान्यता से अमीर बनें या न बनें तनावग्रस्त तो बने ही रहते हैं। यह माना कि कई धनवान अनैतिक कार्य करते हैं किन्तु ऐसे व्यक्तियों को यह विचारना चाहिए कि कितने प्रतिशत गरीब व्यक्ति जो अनैतिकता अपना रहे हैं या अपनाने के लिए तैयार हैं, अपनी इस प्रवृत्ति से अमीर बन जाते हैं। यदि अमीरी का नुस्खा इतना सरल होता तो अब तक दुनिया की गरीबी मिट चुकी होती। आशा, उत्साह, उमंग, धैर्य, मेहनत आदि से मुख्य मार्ग बनता है। हमारे हित में यह है कि हम मुख्य मार्ग को पहचानें एवं अपनाएं।

ऐसे व्यक्तियों को नेपोलियन हिल के अनुसंधान कार्य से भी परिचित होने की आवश्यकता है। उन्होंने कई वर्षो तक यह अनुसंधान कार्य किया कि उच्च कोटि के अति अमीर व्यक्तियों में ऐसी क्या विशेषताएं है जिनके कारण वे अमीर बने हैं व अमीर बने हुए हैं। खोज से प्राप्त परिणाम कई लोकप्रिय पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुए हैं। उन्होंने जीवन में अध्यात्म के सिद्धान्तों एवं धनात्मक चिन्तन का महत्त्व कई रूपों में स्वीकारा। उनका निम्नांकित उद्धरण भी पठनीय हैः

"Until you have learned to be tolerant with those who do not always agree with you, until you have cultivated the habit of saying some kind word to those whom you do not admire, until you have formed the habit of looking for the good instead of the bad there is in others, you will be neither successful nor happy."

उक्त कथन का सारांश यह है कि जब तक आपसे असहमत होने वालों के प्रति आपमें सहिष्णुता नहीं आती, जब तक आपको पसंद न आने वाले व्यक्ति के प्रति कुछ प्रिय शब्द बोलने का अभ्यास न हो, जब तक अन्य व्यक्तियों में बुरा न देखते हुए अच्छा देखने की आदत न हो जाये, तब तक आप न तो सफल हो सकते हो और न ही सुखी हो सकते हो।

अध्यात्म को स्वीकारने से व्यक्ति निर्धन हो जाता है या धनी व्यक्ति आध्यात्मिक नहीं हो सकता है यह एक दोषपूर्ण एकान्त मान्यता है।

अध्यात्म एक तरफ आत्मा को परिवार से भिन्न बताता है तो दूसरी तरफ आध्यात्मिक गृहस्थ व्यक्ति अपने परिवार की सेवा अधिक अच्छी तरह से करता हुआ दिखाई देता है। आध्यात्मिक गृहस्थ व्यक्ति अपने माता-पिता, पति/पत्नी, पुत्र-पुत्री के प्रति अपना दायित्व भी निभाता है तो उनको अपने आधीन रखने की भावना नहीं रखता है। वह परिवार के सभी सदस्यों को यथायोग्य सम्मान देता है व उनकी स्वतंत्रता को स्वीकारता है। वह परिवार के लिए बहुत कुछ करते हुए दिखाई देता है किन्तु कभी यह नहीं मानता है कि परिवार उसके सहारे से चल रहा है। अध्यात्म के इस अनेकान्त रूप का परिचय जिसे नहीं है वह तो मात्र कहीं से सुनी-सुनाई बात के आधार पर यही एकान्त बात कहेगा कि आध्यात्मिक व्यक्ति जब शरीर को ही अपना नहीं मानता है तब माता-पिता परिवार को कैसे अपना मानेगा? और जब उन्हें अपना नहीं मानेगा तब उनकी सेवा कैसे करेगा ?

इसी प्रकार की एकान्त मान्यता के आधार पर ही कोई यह मान लेता है कि आध्यात्मिक व्यक्ति को धन से लगाव नहीं होता है अतः वह निर्धन होता है। जबकि अनेकान्त रूप यह है कि आध्यात्मिक गृहस्थ अपने को एक तरफ धन से भिन्न मानते हुए धन का दास नहीं बनता है तो दूसरी तरफ सुलझे हुए मस्तिष्क से, आलस्य एवं दुश्मनों की संख्या में कमी से, जुआ आदि कुव्यसनों से रहित होने से, प्रकृति की व्यवस्था पर विश्वास से निर्भय, वीर आशावादी एवं उत्साही होने से धनी बनने के अधिक अवसर प्राप्त करता है। यही अनेकान्त आध्यात्मिक गृहस्थ के शरीर के स्वास्थ्य के मामले में भी देखा जा सकता है।

अध्यात्म के अनेकान्तवाद का यह विचार आध्यात्मिक गृहस्थ की अपेक्षा से किया गया है। गृहत्यागी तपस्वी के रूप में आध्यात्मिक अवस्था का अनेकान्तात्मक वर्णन इस पुस्तक की सीमा से परे है।

सारणी क्र. 10

सामान्य आध्यात्मिक गृहस्थ की मान्यता एवं व्यवहार की अनेकान्तात्मकता के कुछ उदाहरण

1) स्वयं का परिचय	आध्यात्मिक गृहस्थ स्वयं का परिचय शरीर से पृथक आत्मा के रूप में मानता है जिसका कभी जन्म नहीं होता है। किन्तु बैंक में व्यापार में या न्यायालय में शपथपूर्वक अपना परिचय शरीर के रूप में देता है। शरीर के 'जन्म' की तिथि को अपना जन्म दिनांक बताता है। शरीर की बीमारी का इलाज करवाता है।
2) परिवार का पालन	आध्यात्मिक गृहस्थ यह मानता है कि माता-पिता, पति/पत्नी, पुत्र-पुत्री आदि रिश्ते अस्थायी हैं व आत्मा की सचमुच में इनसे कोई रिश्तेदारी नहीं है। ऐसा मानते हुए भी अपने परिवार के सदस्यों के प्रति लगाव व यथायोग्य लालन-पालन, सेवा आदि का कर्त्तव्य निष्ठापूर्वक करता है। आध्यात्मिक गृहस्थ अपने परिवार की बहुत अच्छी सेवा करते हुए दिखाई देता है किन्तु कभी यह नहीं मानता है कि परिवार उसके सहारे चल रहा है या परिवार के सदस्य उसके अधीन हैं।
3) धन की रक्षा	आध्यात्मिक गृहस्थ की मान्यता यह होती है कि धन-दौलत आदि आत्मा से पृथक हैं। धन की चोरी होने पर वह यह मानता है कि यह उसके ही किन्हीं कर्मों का फल है। ऐसा मानते हुए भी वह आलस्य रहित होकर धन का अर्जन करता है, धन का अपव्यय नहीं करता है व धन की हानि होने पर यथोचित क्षतिपूर्ति करने का प्रयास करता है, व चोर के प्रति अंतरंग में सहानुभूति व क्षमा होते हुए भी पुलिस आदि को कानून व न्याय बनाये रखने में सहयोग करता है।

4.7 अध्यात्म एवं समाज

भौतिकवादी संस्कृति से एक तरफ हमें कई भौतिक साधन मिले हैं तो दूसरी तरफ करूणा एवं सहानुभूति जैसे अमूल्य आध्यात्मिक मोतियों को हमने भौतिक साधनों की चकाचौंध में मंद कर दिया है। आध्यात्मिक करूणा, सहानुभूति या वात्सल्य भाव के होते हुए आपसी गलतफहमी कुछ मामलों में हो सकती है किन्तु अध्यात्म से आतंकवादी संस्कृति विकसित नहीं हो सकती है। जब आध्यात्मिक करूणा युक्त व्यक्ति जानवरों की रक्षा का भाव रखते हुए शाकाहारी होता है तब वह छोटे-छोटे स्वार्थों की पूर्ति हेतु मनुष्य के खून का प्यासा कैसे हो सकेगा? वस्तुतः शाकाहार से न केवल जानवरों की रक्षा होती है अपितु शाकाहारी प्रवृत्ति से उत्पन्न दया एवं करूणा भावों से जब जानवरों की रक्षा होती है तब मनुष्य की रक्षा तो बिना प्रयास किये स्वतः ही हो जाती है। यानी शाकाहार द्वारा हम न केवल जानवरों की अपितु मनुष्यों की भी रक्षा करते हैं।

एक बड़े उद्योगपति या उसके बच्चे का अपहरण हो जाता है तब उसे छुड़वाने के लिए करोड़ों रूपये दिये जा सकते हैं। काश, धनिक वर्ग आध्यात्मिक करूणा, सहानुभूति एवं वात्सल्य को अपना कर अपनी अर्जित सम्पत्ति का एक अंश भी दान के रूप में अभाव से ग्रसित व्यक्तियों पर सतत खर्च करता रहे तो पहले अपहरण एवं फिर लाखों करोड़ों रूपये देने की स्थितियां शून्य नहीं तो न्यून अवश्य हो सकती हैं।

धर्म या सम्प्रदाय के नाम पर कई युद्ध हुए हैं यह तर्क धर्म के विरोध में बहुधा दिया जाता है। क्या अनेकांतवाद के विरोध में ऐसा तर्क संभव है? दूसरी बात यह भी विचारने की है कि यदि आज तक जितने भी व्यक्ति मरे हैं उनमें सबसे अधिक संख्या ऐसे व्यक्तियों की है जो बिस्तर पर लेटे हुए थे तो क्या इस आधार पर बिस्तर को मृत्यु का सबसे बड़ा कारण कहना उचित होगा ? राज्य, धन, वैभव, अधिकार की लालसा की बीमारी से ग्रस्त व्यक्ति किसी सम्प्रदाय रूपी बिस्तर पर लेट कर युद्ध रूपी मृत्यु को आमंत्रित करता है तो इसमें बिस्तर का कितना दोष ?

ऐसे ही युद्ध भाषा या चमड़ी के रंग के आधार पर भी होते रहे हैं। ऐसी स्थिति में क्या भाषा का त्याग कर दिया जाये या चमड़ी का त्याग कर दिया जाये? तीसरी बात यह भी है कि अध्यात्म समस्त सम्प्रदायों से परे है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि अध्यात्म के सभी पक्षों को समझने पर यह देखा जा सकता है कि अध्यात्म न केवल श्रेष्ठ व्यक्ति अपितु एक श्रेष्ठ समाज की रचना में सशक्त भूमिका का निर्वाह करता है।

परिशिष्ट

स्याद्वाद एवं अनेकान्त

अनेकान्त की जहाँ बात होती है वहाँ स्याद्वाद शब्द का उल्लेख न करना विद्वानों की दृष्टि में बहुत अधूरा होगा। अध्याय 1 में यह दर्शाया गया है कि किसी भी वस्तु या घटना का कोई वर्णन जब किया जाता है तब यह बताना आवश्यक है कि यह वर्णन किस दृष्टिकोण या अपेक्षा से है। जैसे एक मकान के कई चित्र खींचें जा सकते हैं। कौनसा चित्र कहां से व किस कोण से लिया है यह जानने से ही चित्र की उपयोगिता होती है। उसी तरह कई कथन उपयोगी तभी होते हैं जब यह जानकारी हो कि कौनसा कथन किस अपेक्षा से है। अनेकान्तवाद एवं स्याद्वाद को स्थूल रूप से समझने के लिए एक मकान के कई चित्रों का उदाहरण लिया जा सकता है। मकान को समझने के लिए मकान के अनेक चित्रों की आवश्यकता होती है इसका अर्थ है अनेकान्त की आवश्यकता। कई चित्रों के माध्यम से मकान का कथन करना व कथन करते हुए यह अपेक्षा बताना कि कौनसा चित्र किस स्थान से व किस कोण से लिया गया है- स्याद्वाद कहलाता है। दूसरे शब्दों में अनेकान्तमयी वस्तु का कथन करने की पद्धति स्याद्वाद कहलाती है।

क्षु. जिनेन्द्र वर्णी जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश (4-496) में लिखते हैंः-

''अनेकान्तमयी वस्तु का कथन करने की पद्धति स्याद्वाद है। किसी भी एक शब्द या वाक्य के द्वारा सारी की सारी वस्तु का युगपत् कथन करना अशक्य होने से प्रयोजनवश कभी एक धर्म को मुख्य करके कथन करते हैं और कभी दूसरे को। मुख्य धर्म को सुनते हुए श्रोता को अन्य धर्म भी गौणरूप से स्वीकार होते रहें उनका निषेध न होने पावे इस प्रयोजन से अनेकान्तवादी अपने प्रत्येक वाक्य के साथ स्यात् या कथंचित शब्द का प्रयोग करता है।''

नोट :- यहां उक्त पैरा में 'धर्म' शब्द का अर्थ सम्प्रदाय (Religion) या अध्यात्म (Spirituality) नहीं है। यहां धर्म का अभिप्राय किसी वस्तु के किसी पक्ष (Aspect) से है।

स्यात् का शाब्दिक अर्थ होता है कंथचित या किसी अपेक्षा। अतः स्याद्वाद (स्यात् + वाद) का शाब्दिक अर्थ है कथन करने की वह विधि जिसमें प्रत्येक कथन किस अपेक्षा से किया जा रहा है इसका उल्लेख या समझ हो।

'स्याद्वाद' में 'वाद' के पहले 'स्यात्' होने के कारण 'अपेक्षा' की प्रधानता है। 'अनेकान्तवाद' शब्द में 'वाद' के पहले 'अनेकान्त' होने से 'अनेक' की प्रधानता है। अपेक्षा के बिना अनेक चित्रों का कथन उपयोगी नहीं हैं व अनेक चित्रों की आवश्यकता न हो तो 'अपेक्षा' (चित्र लेने का कोण व स्थान) बताने की उपयोगिता नहीं बनती है। इस दृष्टि से अनेकान्तवाद एवं स्याद्वाद, दोनों शब्द, यह बताते हैं कि वस्तु या घटना के अनेक पक्ष होते हैं व प्रत्येक पक्ष का महत्त्व तभी है जब यह बताया जाये कि किस अपेक्षा से अमुक पक्ष कहा गया है। दोनों शब्दों में अन्तर की अपेक्षा यों कहा जा सकता है कि अनेकान्तपना वस्तु या घटना में होता है व स्यात्पना कथन में होता है।

विकासचन्द्र का परिचय देते हुए कोई यह कहे कि विकासचन्द्र किसी के पुत्र भी हैं व किसी के पिता भी हैं, व किसी के मामाजी भी हैं, ..., किसी देश के नागरिक भी हैं, किसी प्रकार का कार्य भी करते हैं, किसी संस्था के सदस्य भी हैं, ..., इत्यादि तरह से कोई सौ कथन भी करे तो कोई सार्थक परिचय नहीं बनता है। अनेक कथनों का विकासचन्द्र के परिचय में लाभ तब होगा जब यह कहा जाये कि ये विकासचन्द्र अमुक के पुत्र हैं, अमुक के मामाजी हैं, ..., अमुक कार्य करते हैं, ..., इत्यादि -इत्यादि। तात्पर्य यह है कि किस अपेक्षा से कोई कथन किया जा रहा है उस अपेक्षा को बताने से ही स्याद्वाद कथन का पूरा लाभ मिलता है।

स्याद्वाद के साथ स्याद्वाद के सात भंगों की बात भी विद्वानों की रुचि का विषय रही है। इन सात भंगों का उल्लेख पंचास्तिकाय की गाथा 14 में आचार्य कुन्दकुन्द ने आज से 2000 वर्ष पूर्व निम्नानुसार किया हैः-

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि।।

अर्थ :- द्रव्य आदेशवश (कथन के वश) वास्तव में (1) स्यात् अस्ति, (2)

स्यात् नास्ति, (3) स्यात् अस्ति-नास्ति, (4) स्यात् अवक्तव्य, और अवक्तव्यतायुक्त तीन भंग वाला - (5) स्यात् अस्ति-अवक्तव्य, (6) स्यात् नास्ति-अवक्तव्य, एवं (7) स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य, इस प्रकार सात भंग वाला है।

जब एक प्रश्न का उत्तर किसी अपेक्षा 'हां' भी उचित न हो, व किसी अन्य अपेक्षा से 'ना' भी उचित न हो वहां यदि कहा जाये कि 'हां' या 'ना' में उत्तर दो तो वहां सही उत्तर देना संभव नहीं होता है, अतः वहां उत्तर देने वाला चुप हो जाता है, या वह कहता है कि एक शब्द ('हां' या 'ना') में उत्तर देना सम्भव नहीं है, इस स्थिति का नाम अवक्तव्यता है।

अवक्तव्यता को और अधिक स्पष्ट करने के लिए एक अन्य उदाहरण पर विचार करते हैं।

सास-बहू के झगड़े में बहू के पति को मां पूछे, ''तुम केवल एक प्रश्न का उत्तर केवल 'हॉ' या 'ना' में दो कि क्या मैं दोषी हूॅ?'', व झगड़े की जानकारी के आधार पर बेटा यदि यह जाने कि पूरे मामले में कहीं उसकी मां दोषी नहीं है व कहीं दोषी है, अतः वह यदि इस कारण चुप रहे कि 'हॉ' या 'ना' में उत्तर देना संम्भव नहीं है तो इसे अवक्तव्यता कहा जायेगा।

उपयोगी बात इस उदाहरण से यह निकल सकती है कि जब भी अवक्तव्यता की स्थिति हो व आगे रास्ता निकालना हो तो स्यात् अवक्तव्य भंग को स्यात् अस्ति-नास्ति भंग में बदल कर देखना चाहिए। यदि मां यह पूछे, '' यह बताओ कि कहां किस मामले में मैं दोषी नहीं हूॅ व कहां मेरे से जाने-अनजाने में भूल हुई है ?'', तो आगे समाधान का रास्ता सरल हो जाता है।

अन्य कई स्थितियों में भी इसी तरह अपेक्षा के अनुसार या परिस्थिति के अनुसार उत्तर भिन्न -भिन्न होते हैं। किन्तु जो केवल एक 'हां' या एक 'ना' में ही उत्तर पाने की जिदद् नहीं करते हैं, यानी जो स्याद्वाद को अपना रहे होते हैं उनके तनाव कम होते हैं। उनकी समस्याएं भी सुलझती रहती हैं। यहां यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि स्याद्वाद को जीवन में अपनाने हेतु स्याद्वाद शब्द जानना जरूरी नहीं है।

कई मामलों मे आपसी समझ की कमी दो राष्ट्रों के बीच भी हो सकती है। राष्ट्रों के बीच भी विभिन्न परिस्थितियों को स्याद्वाद रूप समझने

पर, यानी यह जानने पर कि किस अपेक्षा से किसकी 'हां' है व किस अपेक्षा से किसकी 'ना' है, समस्या के समाधान की दिशा मिलती है।

स्याद्वाद की उपयोगिता समझने हेतु एक उदाहरण पर विचार करते हैं। एक दिन विमल थियेटर जाने के लिए पत्नी से 'हां' कर चुका होता है, किन्तु थियेटर जाने के लिए घर से निकलने के दस मिनट पूर्व ही फोन से यह सूचना मिलती है कि उसका एक विशिष्ट मित्र कुछ घंटों के लिए अन्य शहर से आया हुआ है। यह सूचना प्राप्त होते ही विमल अपना थियेटर जाने का प्रोग्राम रद्द कर देता है। इस पर उसकी पत्नी निशा को नाराज एवं दुःखी होने का पूरा अधिकार मिल जाता है। यह उसकी समझदारी पर निर्भर करता है कि वह नाराज हो या न हो। यदि वह यह जानती हो कि पति की जो थियेटर के लिए 'हां' थी वह स्यात्-अस्ति थी, यानी वह ''हां'' सामान्य परिस्थितियों के लिए थी तो निशा या तो नाराज नहीं होगी या उसकी नाराजगी थोड़े ही समय में दूर हो जायेगी। परिवार में 'हां' भरने के पूर्व यह नहीं कहा जाता है कि यह 'हां' सामान्य परिस्थितियों में ही लागू होगी। बिना कहे ही यह बात समझने की है कि कई मामलों में विशेष परिस्थितियों में 'हां', 'ना' में बदल सकती है।

इसी तरह के कई उदाहरण हमारे रोजमर्रा के जीवन से दिये जा सकते हैं जहां कभी पति इसी तरह पत्नी का कथन समझने में भूल करता है, तो कभी पत्नी पति का। कभी पिता पुत्र को तो कभी पुत्र पिता को समझने में भूल करता है। कभी दो मित्रों के बीच गलतफहमी होते हुए दिखाई देती है। आश्चर्य की बात तो तब लगती है जब झगड़े के पीछे कुछ शब्द ही होते हैं, यानी किसी प्रकार की कोई भौतिक या आर्थिक लाभ-हानि न होने पर भी कुछ शब्दों को आधा-अधूरा समझकर दो निकट के व्यक्ति दूर हो जाते हैं। इस तरह की भूलों का सुधार करने हेतु यद्यपि प्रायश्चित, क्षमा आदि कई उपाय हैं, किन्तु अधिक श्रेष्ठ तो यह है कि स्याद्वाद समझ से अनावश्यक झगड़ा पैदा ही न हो।

स्याद्वाद को समझकर कोई इतना ही समझ ले कि हर कथन किसी अपेक्षा को लिए हुए होता है, तो कई रिश्ते अधिक मधुर हो सकते हैं। कहीं अपेक्षा का स्पष्ट उल्लेख होता है व कहीं भूल से या परम्परा से उल्लेख नहीं होता है किन्तु सुनने वाला यदि उचित अपेक्षा को नहीं समझता है तो उसकी

समझ अधूरी है व इस अधूरी समझ से परेशानी भी हो सकती है।

उक्त चर्चा उन व्यक्तियों के सन्दर्भ में की जा रही है जो अपनी वाणी एवं आचरण से अच्छे हैं यानी जो जानबुझकर भ्रम पैदा नहीं करना चाहते हैं। असत्यवादियों की बात को समझने में भी स्याद्वाद कुछ अंशों तक मदद कर सकता है किन्तु ऐसे व्यक्तियों से सत्य कैसे निकलवाया जाये यह इस पुस्तक के दायरे से परे है।

अध्यात्म की बात कई मामलों में सांसारिक बातों से ज्यादा सरल है व कई मामलों में ज्यादा कठिन है। कठिन मामलों में स्याद्वाद की आवश्यकता विशेष हो जाती है। जैसे आत्मा की अमरता एवं जीव की हिंसा का पाप, भाग्य एवं पुरूषार्थ, गोली से मृत्यु होने पर जिम्मेदार मरने वाले के कर्मोदय या गोली चलाने वाला, ... इस तरह के विषय स्याद्वाद शैली से अधिक अच्छी तरह से समझ में आ सकते हैं।

बीमार होने पर हम कभी यह नहीं पूछते हैं कि बीमारी को डॉक्टर ठीक करता है या दवा ठीक करती है। हम पूरी बात को समझते हैं कि डॉक्टर को दिखाना है, उसके अनुसार दवा लेना है, पथ्य रखना है व बीमार के मन को अधिक शान्ति मिले ऐसा उपाय करना है।

बीमारी के इलाज के मामले में सामान्य जन भी कहेंगे कि हम पूरी बात समझ रहे हैं व हमें स्याद्वाद शैली की यहां आवश्यकता नहीं है।

वस्तुस्थिति यह है कि जिसको हम जान चुके होते हैं या समझ चुके होते हैं उसको यदि हमें कोई स्याद्वाद या अनेकांत पर जोर देते हुए वही बात समझाये तो हमें यह अनावश्यक भी लग सकता है। दो और दो चार होते हैं। इस जोड़ हेतु कोई कम्प्यूटर, केलक्यूलेटर या पेन-कागज काम में नहीं लेना चाहता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कम्प्यूटर या केलक्यूलेटर या पेन-कागज अनावश्यक है।

एक देहाती अपनी मिट्टी एवं बांस की झोंपड़ी को सभी कोणों से इतना अच्छी तरह जानता है कि उसे उसकी झोंपड़ी को 100 फोटोग्राफ से समझाने की आवश्यकता नहीं होती है। उत्तर से झोंपड़ी का फोटो ऐसा, दक्षिण से ऐसा, 45 डिग्री कोण से नैर्ऋत्य दिशा से ऐसा, ... इस तरह के वर्णन एवं फोटो देखकर वह यह कह सकता है, ''मुझे यह सब समझाने

की आवश्यकता नहीं है। इतने चित्रों से तो मुझे यह शंका भी होने लगती है कि आप मेरी झोंपड़ी की बात कर रहे हो या कुछ और दिखा रहे हो।''

किन्तु अमरीका के किसी म्यूजियम में वैसी ही झोंपड़ी एक अमरीकी इंजीनियर को बनाना हो जिसने ऐसी झोंपड़ी कभी न देखी हो तो 100 फोटोग्राफ भी कम पड़ सकते हैं।

तात्पर्य यह है कि सरल उदाहरणों में यदि कहीं स्याद्वाद की उपयोगिता समझ में न आये तो इसका अर्थ यह नहीं लेना कि स्याद्वाद उपयोगी नहीं है। स्याद्वाद से इतना तो समझना ही है कि जैसे भवन का प्रत्येक चित्र किसी दूरी व कोण से लिया हुआ होता है उसी तरह प्रत्येक कथन किसी अपेक्षा को लिये हुए होता है। यदि अपेक्षा समझ में न आये या अपेक्षा समझने में भूल हो जाये तो एक सत्य कथन भी असत्य के समान हो सकता है।

इसको ध्यान में रखते हुए हमारे माता-पिता, भाई-बहन, पति/पत्नी, पड़ोसी, ग्राहक, आश्रित, बॉस आदि के कुछ कथनों को लेकर हमारे मन में तनाव हो तो, हो सकता है वहां स्याद्वाद की विशेष आवश्यकता हो। यह देखना उपयोगी हो सकता है कि कहीं हम कोई कथन अधूरा या उल्टा तो नहीं समझ रहे हैं, या कहीं हमारे कथनों से तो गलत संदेश सामने वाले को नहीं मिल रहा है।

सारांश यह है कि अनेकांत समझ पर आधारित जीने की कला से हमारा वातावरण एवं हम सुवासित हो सकते हैं।